

DURGA SAH MUNICIPAL LIBRARY
NAINI TAL
दुर्गा साह म्युनिसिपल पुस्तकालय
नैनी ताल
Class no. 891.3
Book no. R12M
Reg no. 4323

मास्टर साहब

स्व० रविन्द्रनाथ ठाकुर

मूल्य —एक रुपया आठ आना

प्रकाशक—



प्रथम संस्करण दिसम्बर १९५६

4323

मुद्रक—
राष्ट्रभाषा मुद्रणालय,
लहरतारा, वाराणसी।

भूमिका

तब रात के प्रायः दो बज चुके थे। कलकत्ता नगर के निस्तब्ध शब्द-सागर में थोड़ी सी लहरें पैदा करती हुई एक बग्गी भवानीपुर की तरफ से आकर बिजी तलाब के मोड़ के पास रुक गयी। पास ही एक भड़ाटिया गाड़ी देखकर आरोही बाबूसाहब ने उसे आवाज दी। उनकी बगल में एक हैट-कोट धारी, विलायत से लौटा हुआ एक बङ्गाली युवक, सामने के आसन पर अपने दोनों पैर रखकर, मदमत्त अवस्था में गरदन झुकाये सो रहा था। यह युवक अभी हाल में ही विलायत से आया है। इसकी अभ्यर्थना के उपलक्ष्य में मित्र-मण्डली में एक भोज-समारोह का आयोजन किया गया था। उसी भोज से लौटते समय एक मित्र ने, उसको कुछ दूर आगे तक पहुँचा आने के लिए अपनी गाड़ी पर चढ़ा लिया था। उन्होंने उसको दो-तीन बार झकझोर कर कहा—"मजूमदार, गाड़ी मिल गयी। घर जाने की तैयारी करो।"

मजूमदार चौंक कर उठ पड़ा और अपना संक्षिप्त सामान लेकर विलायती सुन्दर भड़ाटिया गाड़ी पर सवार हो गया। गाड़ीवान को अच्छी तरह ठिकाना बतलाकर, बग्गी के आरोही अपने घर की ओर लौट पड़े।

भड़ाटिया गाड़ी कुछ दूर तक सीधी चलती रही, फिर पार्क स्ट्रीट के सामने मैदान में घूम पड़ी। मजूमदार ने अँग्रेजी में बड़बड़ाते हुए अपने मन में कहा—'यह क्या। यह तो मेरा रास्ता नहीं है!' उसके बाद निद्राभिभूत अवस्था में उसने सोचा—'हो भी सकता है, सम्भवतः यही सीधा रास्ता हो।'

मैदानी क्षेत्र में प्रवेश करते ही मजूमदार के शरीर की एक अजीब-सी अवस्था हो गयी। हठात् उसको मालूम हुआ जैसे कोई मनुष्य पास में नहीं है, फिर भी बगल का रिक्त स्थान मानो भरता जा रहा है; मानो उसके आसन के शून्य अंश का आकाश, ठोस होकर उसे कसता जा रहा है। मजूमदार ने सोचा—'यह क्या बात है, इस गाड़ी ने मेरे साथ यह कैसा व्यवहार शुरू कर दिया है?'

"गाड़ीवान, ओ गाड़ीवान!"

गाड़ीवान ने कोई जवाब नहीं दिया। गाड़ीवान के आगेवाली खिड़की को खोलकर साहब ने उसका हाथ जोर से दबाकर कहा—"तुम भीतर आकर बैठो।"

गाड़ीवान ने भयग्रस्त कण्ठ से कहा—"नहीं साहब, मैं भीतर आकर नहीं बैठूँगा।"

सुनकर मजूमदार के शरीर का रोम-रोम जाग उठा। उसने इस बार और अधिक जोर से गाड़ीवान का हाथ दबाते हुए कहा—"जल्दी भीतर आओ।"

गाड़ीवान बलपूर्वक अपना हाथ छुड़ा, उतरकर भाग चला। तब मजूमदार ने विवश होकर डरते-डरते अपने बगल की ओर ध्यान से देखा। कुछ भी दिखाई नहीं पड़ा। फिर भी ऐसा मालूम पड़ा जैसे बगल में ही एक अटल पदार्थ एकदम दुबक कर बैठा हुआ है। किसी तरह साहस बटोरकर, गले में आवाज भरकर मजूमदार चिल्लाया—"गाड़ीवान, गाड़ी रोक दो।" मजूमदार को ऐसा जान पड़ा, जैसे गाड़ीवान ने दोनों हाथों से रास खींचकर घोड़ों को रोक देने की चेष्टा की हो—पर घोड़े किसी तरह भी नहीं रुके। वे रेड रोड का रास्ता पकड़कर फिर दक्षिण की ओर घूम पड़े। मजूमदार घबड़ाकर पुनः चिल्लाया—"अरे, कहाँ जा रहा है?"

कोई भी उत्तर नहीं मिला। पास की शून्यता को देख-देखकर मजूमदार के सर्वाङ्ग से पसीना निकलने लगा। किसी तरह स्थिर हो, उसने अपने शरीर को यथाशक्ति समेट कर संकीर्ण बनाया। किन्तु उसने जितनी जगह छोड़ी, उतनी पुनः भर उठी। मजूमदार मन ही मन तर्क करने लगा—किसी प्राचीन यूरोपीय विद्वान ने कहा है—Nature abhors vacum—यही तो यहाँ देख रहा हूँ। किन्तु यह क्या! यह क्या Nature है? यदि यह मुझे कुछ भी न कहे, तो भी मैं इसी क्षण सारी जगह इसके ही लिए छोड़कर कूद पड़ूँ। कूद जाने का साहस उसे नहीं हुआ—यह शंका हुई कि कहीं पीछे की तरफ कोई ऐसी घटना न हो जाय जिसकी कल्पना तक भी नहीं की जा सकती। 'पहरेदार' को पुकारने की चेष्टा उसने की—किन्तु बड़े कष्ट से स्वतः एक व्यर्थ क्षीण आवाज निकल पड़ी। अत्यन्त भय के बीच भी उसे हँसी आ गयी। अन्धकारपूर्ण मैदान के सभी वृक्ष भूतों की निस्तब्ध पार्लमेण्ट की तरह एक दूसरे के आमने-सामने खड़े हैं। गैस के खम्भे मानो सब कुछ जानते हैं, पर बताना नहीं चाहते, इसीतरह खड़े रहकर टिम-टिमाती हुई प्रकाश-शिखा से आँखें मटकाते रहेगें।

झट से एक ही कुदान में सामने के आसन पर जा बैठने का विचार मजूमदार ने किया। पर तुरन्त ही उसने अनुभव किया कि, सामने के आसन से केवल एक ही दृष्टि उसके मुँह की ओर गौर से देख रही है। उसके नेत्र नहीं है, कुछ भी नहीं हैं, तो भी एक दृष्टि है। वह दृष्टि किसकी है, यह मानो याद पड़ रहा है, पर जोर लगाने पर भी उसकी स्मरण-शक्ति कुण्ठित ही रही। मजूमदार ने अपनी दोनों आँखों को बलपूर्वक बन्द करने की चेष्टा की, किन्तु बन्द न कर सका—उस दृष्टि की ओर वह अपनी आँखों को इतनी दृढ़ता के साथ खोले रहा कि, पलक गिराने का भी समय उसे नहीं मिला।

उधर गाड़ी मैदानी रास्ते पर चक्राकार घूमने लगी। दोनों घोड़े

उन्मत्त से हो उठे थे—उनका वेग लगातार बढ़ता गया—गाड़ी की खिड़कियों के दरवाजे कम्पन के साथ परस्पर टकराने लगे।

अकस्मात् गाड़ी किसी चीज के साथ धक्का खाकर हठात् रुक गयी। मजूमदार ने चकित होकर देखा कि उनके ही गन्तव्य मार्ग पर गाड़ी खड़ी है और गाड़ीवान उनसे पूछ रहा है—"साहब, बताइये कहाँ जाना होगा।"

मजूमदार ने क्रुद्ध होकर पूछा—"इतनी देर से तू मुझे इस मैदान में घुमाता क्यों रहा?"

गाड़ीवान ने आश्चर्य में पड़कर कहा—"मैदान में तो मैंने नहीं घुमाया।"

मजूमदार ने अविश्वास के स्वर में कहा—"तो यह क्या केवल सपना ही था?"

गाड़ीवान ने जरा सोचकर भय के साथ कहा—"बाबू साहब, शायद यह केवल सपना मात्र नहीं है। मेरी इसी गाड़ी में आज से तीन वर्ष पहले एक घटना हुई थी।"

तब तक मजूमदार का नशा और नींद की खुमारी पूर्णरूप से दूर हो गयी थी। इसलिये गाड़ीवान की बात पर ध्यान न देकर उसका भाड़ा चुका, वह पैदल चला गया।

किन्तु रात के समय उसे अच्छी तरह नींद नहीं आयी—केवल यही सोचता रहा, कि वह दृष्टि किसकी थी।



१

अधर मजूमदार के पिता, जल-विभाग की सामान्य मुंशीगिरी से आरम्भ करके एक बड़े दफ्तर में ऊँचे पद पर जा पहुँचे थे। पिता के कमाये हुए नकद रुपयों का उपयोग अधर बाबू ब्याज पर ऋण देकर कर रहे हैं, उनको स्वयं काम करने की जरूरत नहीं पड़ती। पिता माथे पर सफेद फेटा बाँध कर, पालकी पर सवार हो दफ्तर जाया करते थे। इसके अतिरिक्त घर पर पूजा-पाठ, दान-ध्यान भी यथेष्ट चलता रहता था। आफत-विपद् में, अभाव-कष्ट में, सभी श्रेणी के लोग उनके पास आकर सहायता पाने की जिद्द पकड़ लेते थे, इसको वे अपने लिये गर्व का विषय मानते थे।

अधर बाबू ने पक्का मकान बनवाया है, गाड़ी-बग्गी भी रख ली है, किन्तु लोगों के साथ अब उनका कोई सम्पर्क नहीं है। केवल कर्ज पर रुपये दिलाने वाले दलाल उनके पास आते हैं और पान-तमाखू खा-पीकर चले जाते हैं। एटर्नी-आफिस के बाबू लोगों के साथ, स्टैम्प-लगे दस्तावेजों की शर्त के सम्बन्ध में आलोचना चलती रहती है। अपनी गृहस्थी के खर्च के सम्बन्ध में वे ऐसी कड़ाई के साथ काम लेते हैं कि मुहल्ले के फुटबाल-क्लब के जिद्दी लड़के भी, उनके खजाने में से एक पैसा भी नहीं पा सके हैं।

ऐसे ही समय में उनकी गृहस्थी में एक अतिथि का आगमन हुआ। 'लड़का नहीं हो रहा है, लड़का पैदा नहीं हो रहा है' यही रट लगाते-लगाते बहुत दिनों के बाद उनको एक लड़का पैदा हुआ। बच्चे की मुखाकृति माँ से मिलती-जुलती है। उसकी आँखें बड़ी-

बड़ी और नाक का गठन सुन्दर है। शरीर का रङ्ग रजनी-गंधा फूल की पँखुड़ी सदृश है।

जिसने भी देखा उसने यही कहा—"अहा, बच्चा क्या है मानो साक्षात् कार्तिकेय का अवतार है।" अधर बाबू के अनुगत अनुचर रतिकान्त ने कहा—"बड़े घर के लड़के को जैसा होना चाहिये, यह वैसा ही है।"

बच्चे का नाम वेणुगोपाल रक्खा गया। इसके पहले अधर बाबू की स्त्री ननीबाला ने घर के खर्च के विषय में पति पर अपना मत लादने की चेष्टा नहीं की थी। शौक की दो-चार बातों के अतिरिक्त लौकिकता के अत्यावश्यक आयोजनों के बारे में कभी-कभी तर्क-वितर्क तो जरूर हो जाते थे, किन्तु अन्त में पति की कृपणता के प्रति अवज्ञा दिखाकर, वे हार मान जाती थीं।

परन्तु अब अधर बाबू ननीबाला से परास्त होने की स्थिति में हो गये। वेणुगोपाल के सम्बन्ध में उनका हिसाब-किताब धीरे-धीरे खिसकने लगा। उसके पैरों के कड़े, हाथों के कङ्कन, गले का हार, माथे की टोपी, उसकी देशी–विलायती विविध साज-सजावट के सम्बन्ध में ननीबाला जो जो माँग रखती थीं, उन सभी में उनकी ही जीत हो जाती थी, भले ही उनको आँसू बहाना पड़ा हो या ऊँचे स्वर से चीत्कार करना पड़ा हो। वेणुगोपाल के लिए जिन चीजों की जरूरत पड़ती थी, सब अवश्य मिलनी चाहिये। दाम नहीं है, या बाद को किसी दिन देने का मिथ्या आश्वासन उनके सामने एक दिन भी नहीं चलता था।



२

वेणुगोपाल दिन पर दिन बढ़ने लगा। वेणु के लिए खर्च करने में अधर बाबू अब अभ्यस्त हो गये थे। उसके लिए मोटे वेतन पर उन्होंने उच्च-परीक्षोत्तीर्ण एक बूढ़ा मास्टर रख दिया। इस मास्टर ने वेणु को मीठी बोली और शिष्टाचार से अपने वश में करने की चेष्टा की—किन्तु सुना जाता है कि वे आजतक छात्रों को अपने कठोर शासन से चलाते आ रहे थे, और इस प्रकार मास्टरी की मर्यादा बचाते आये थे। भाषा में मिठास, व्यवहार में शिष्टता लाकर भी बच्चे के स्वभाव से उनका मेल न हो सका—इस सूखी साधना से बच्चा फुसलाया न जा सका।

ननीबाला ने अधर बाबू से कहा—"तुम्हारा यह मास्टर कैसा है कि इसको देखते ही लड़का घबड़ा उठता है। इसको हटा दो।"

बूढ़ा मास्टर विदा कर दिया गया। प्राचीन काल में बालिकाएँ जिस तरह स्वयंम्बरा होती थीं, उसी तरह ननीबाला का लड़का बनने लगा। वह जिसका वरण न करेगा, उसके सभी परीक्षोत्तीर्ण सार्टि-फिकेट व्यर्थ हैं।

ऐसे ही समय में एक मैली-कुचैली चादर ओढ़े, पैरों में कैनवस का जूता पहने, मास्टरी की उम्मेदवारी में हरलाल आ धमका। उसकी विधवा माँ ने दूसरों के घर रसोई पकाकर, धान कूट कर, उसको एक देहाती स्कूल से इण्ट्रैन्स पास कराया था। अब हरलाल कलकत्ते के कालेज में पढ़ने की सुदृढ़ प्रतिज्ञा करके घर से चला आया है। भोजन के अभाव में उसकी मुखाकृति का अधोभाग सूख गया है और भारतवर्ष के 'कन्याकुमारी अन्तरीप' की तरह सङ्कीर्ण हो चला

है; केवलमात्र उसका प्रशस्त ललाट हिमालय की तरह प्रशस्त होकर अत्यन्त मनोहारी दीख रहा है। मरुभूमि के बालू से सूर्य की ज्योति जिस तरह छिटक पड़ती है, उसी तरह उसकी दोनों आँखों से दैन्य की एक अस्वाभाविक दीप्ति निकल रही है।

दरवान ने पूछा—"तुम क्या चाहते हो ? किसको चाहते हो ?"

हरलाल ने डरते-डरते कहा—"इस मकान के बाबू के साथ मुलाकात करना चाहता हूँ।"

दरवान ने कहा—"मुलाकात नहीं होगी।"

इसके उत्तर में क्या कहे, यह निश्चय न कर सकने के कारण हरलाल दुविधा में पड़ गया। उसी समय सात वर्ष का बालक वेणुगोपाल बगीचे का खेल-कूद समाप्त कर ड्योढ़ी पर आ पहुँचा। दरवान ने हरलाल को दुविधा में पड़ा देखकर फिर कहा—"बाबू, क्यों खड़े हो ? जाओ ?"

वेणु पर हठात् जिद्द सवार हो गयी। उसने कहा—"नहीं जायगा।" और हठात् उसने हरलाल का हाथ पकड़ कर उसको दुमञ्जिले के बरामदे में अपने पिता के पास उपस्थित कर दिया।

पिताजी उस समय दिवा-निद्रा से जागकर, अलस भाव से बेत की कुर्सी पर चुपचाप बैठकर अपना पैर हिला रहे थे, और बूढ़ा रतिकान्त एक काठ की चौकी पर आसन जमाये धीरे-धीरे तमाखू पी रहा था।

रतिकान्त ने पूछा—"आप कहाँ तक पढ़े हैं ?"

हरलाल ने अपना मुँह जरा झुकाकर कहा—"मैंने इण्ट्रैन्स पास किया है।"

रतिकान्त ने भौंहें ऊपर उठाकर कहा—"केवल इण्ट्रैन्स पास हो ? मैं समझता था कि कालेज में पढ़ चुके हो। आपकी उम्र भी तो बहुत कम नहीं है।"

हरलाल चुप हो रहा। आश्रितों और आश्रय की आशा में आये

हुए लोगों को हर तरह से पीड़ान्तक दुख पहुँचाना रतिकान्त का प्रधान आनन्द था।

रतिकान्त ने प्यार दिखाकर वेणु को अपनी गोद के पास खींच लेने की चेष्टा करते हुए कहा—"कितने ही एम० ए०, बी० ए० पास आये और चले गये, कोई भी पसन्द नहीं आया, अन्त में सोनाबाबू क्या एन्ट्रेन्स पास मास्टर से पढ़ेंगे ?"

वेणु ने रतिकान्त के प्यार के आकर्षण को बलपूर्वक ढकेल कर कहा—"चुप रहो !"

रतिकान्त का आचरण वेणु किसी तरह भी सह नहीं सकता था, किन्तु रतिकान्त वेणु की इस असहिष्णुता को उसके बालसुलभ माधुर्य का एक लक्षण मानता था। फलतः उससे खूब आमोद पाने की चेष्टा में वह उसको सोना बाबू, चाँद बाबू आदि कहकर अपनी ओर आकर्षित करता था।

हरलाल को उम्मेदवारी में सफल होना कठिन काम मालूम पड़ा। वह मन ही मन सुयोग देखकर बाहर चले जाने की सोच रहा था। ऐसे ही समय में हठात् अधर बाबू के मन में विचार आया कि यह लड़का बहुत कम वेतन पर रखा जा सकेगा। अन्त में यही स्थिर हुआ कि हरलाल घर में रहेगा, खायेगा-पीयेगा और पाँच रुपये मासिक वेतन पायगा। घर में रखकर जो अतिरिक्त अनुग्रह प्रकट किया जायगा, उसके बदले में अतिरिक्त काम कराकर वह अनुग्रह सार्थक हो जायगा।

उस दिन ऐसे ही अवसर पर, इसी अवस्था में, दैवयोग से हरलाल मास्टर के पद पर रख लिया गया।



३

इस बार मास्टर टिक गया। प्रारम्भ से ही हरलाल के साथ वेणु का ऐसा मेल बैठ गया, मानो दोनों भाई हों। कलकत्ते में हरलाल का आत्मीय-स्वजन कोई भी नहीं था—इस सुन्दर छोटे बालक ने उसके सम्पूर्ण हृदय को छेंक लिया। अभागे हरलाल को इस तरह किसी को प्यार करने का सुअवसर इसके पहले कभी नहीं मिला था। क्या करने से उसकी अवस्था अच्छी हो सकेगी, इस आशा से वह बड़े कष्ट से पुस्तकें जुटा कर केवल अपनी ही चेष्टा से पढ़ता रहा। माँ को पराधीन रहना पड़ा था, इस कारण लड़के का बाल्यकाल केवल सङ्कोच में ही व्यतीत हुआ था। निषेध की सीमा को पार करके दुष्टता द्वारा अपने बाल्य-प्रताप को विजयी बना देने का सुख उसे किसी दिन भी नहीं मिला था। वह किसी के भी दल में नहीं था। वह अपनी फटी-पुरानी पुस्तकों और टूटे-फूटे स्लेट के बीच अकेला ही था।

संसार में जन्म ग्रहण करके जिस बालक को बाल्यकाल में ही निस्तब्ध भला आदमी बनना पड़ा हो, माता के दुःखों और अपनी अवस्था को भलीभाँति समझ कर जिसे चलना पड़ा हो, पूर्णरूप से आलोचक होने की स्वतन्त्रता जिसके भाग्य में कभी प्राप्त नहीं हुई हो, दूसरों की असुविधा न हो, इस भय से जिसे दबकर चलना पड़ा हो, उसकी तरह करुणा का पात्र—साथ ही करुणा से वञ्चित मनुष्य, इस जगत् में और कौन होगा।

उसी पृथ्वी के सभी मनुष्यों के नीचे, दबा पड़ा हुआ हरलाल

खुद भी नहीं जानता था कि उसके मन के अन्दर स्नेह का इतना रस, अवसर मिलने की प्रतीक्षा में इस तरह सञ्चित हो गया था। वेणु के साथ खेलकर, उसको पढ़ाकर, उसकी सेवा कर हरलाल स्पष्ट-रूप से समझ गया था कि अपनी अवस्था की उन्नति करने की अपेक्षा भी मनुष्य के लिए एक और चीज विद्यमान है—वह जब अपना असर डाल देती है, तब उसके सामने और किसी की जरूरत नहीं पड़ती।

वेणु भी हरलाल को पाकर बच गया। क्योंकि, उस घर में वही एक लड़का है और एक तीन वर्ष की बहन है—वेणु उन सबको साथी बनाने के लिए योग्य ही नहीं समझता। मुहल्ले में समान उम्र के लड़कों का अभाव नहीं है, किन्तु अधर लाल अपने घर को अत्यन्त बड़ा घर मान लेने का सुदृढ़ विचार रखता था, इस कारण मिलने-जुलने के लिए उपयुक्त बालक वेणु के भाग्य में न जुट सके। इसीलिए हरलाल उसका एकमात्र साथी हो गया। अनुकूल अवस्था में जितने भी ऊधम होते हैं, वे दस जनों में बँट जाते हैं। किन्तु इस अवस्था में अकेले हरलाल को ही उन्हें सहना पड़ता था। इन सभी उपद्रवों को प्रतिदिन सहते-सहते हरलाल का स्नेह और भी दृढ़ होने लगा।

यह हालत देखकर रतिकान्त कहने लगा—"हमारे सोना बाबू को मास्टर साहब चौपट करने पर तत्पर हो गये हैं।"

अधर लाल के भी मन में जबतब यह विचार उठने लगा कि मास्टर साहब केसाथ छात्र का सम्बन्ध ठीक नहीं जान पड़ता। किन्तु हरलाल को वेणु के संसर्ग से हटा देने की समर्थ्य अब किसी में नहीं है।

४

आज वेणु की अवस्था ग्यारह वर्ष की है। हरलाल एफ० ए० पास करके छात्र-वृत्ति पा गया है और तृतीय वर्ष में पढ़ रहा है। इस अवधि में कालेज के दो-चार मित्रों से उसका सम्बन्ध जुट गया है। किन्तु यह ग्यारह वर्ष का बालक ही उसके सभी मित्रों का सिरमौर है। कालेज से लौटने पर वेणु को साथ लेकर वह गोलदीघी, और किसी-किसी दिन ईडेन गार्डेन में घूमने चला जाता था। उसको ग्रीक इतिहास के वीर-पुरुषों के चरित्र, स्काट और विक्टर ह्यूगो की कहानियाँ, शेक्सपियर का 'जूलियस सीजर' आदि चीजें अपनी भाषा में सुनाता और उनमें से अच्छी चीजों को कण्ठस्थ कराने की चेष्टा करता था। यही छोटा-सा बालक हरलाल के हृदय को उद्बोधित करने के लिए मानो एक सोने की काठी की तरह हो उठा। पहले जब अकेले बैठकर वह अपना पाठ कण्ठस्थ करता, तो वह अँग्रेजी साहित्य का मर्म विशेष अच्छी रीति से नहीं समझ पाता था। अब वह इतिहास, विज्ञान, साहित्य जो कुछ भी पढ़ता है उसमें ज्योंही कुछ रस उसे मिलता है, उसे पहले वेणु को देने के लिए उत्सुक हो जाता है, और वेणु के मन में उस आनन्द का सञ्चार करने की चेष्टा में ही उसकी अपनी समझने की शक्ति और आनन्द की अनुभूति द्विगुणित हो जाती है।

वेणु स्कूल से घर आते ही झटपट जलपान कर लेने के बाद हरलाल के पास जाने के निमित्त एकदम व्यग्र हो उठता था। उसकी माँ उसको किसी भी बहाने, किसी भी प्रलोभन से उसे अन्तः-

पुर में रोक नहीं सकती थी। ननीबाला को यह अच्छा नहीं लगता था। उसके मन में यही भाव उठता था कि, हरलाल अपनी नौकरी सुरक्षित रखने के लिए ही लड़के को इस तरह वश में रखने की चेष्टा कर रहा है। उसने एक दिन हरलाल को बुलाकर परदे की ओट से कहा—"तुम मास्टर हो, लड़के को सबेरे एक घण्टा और शाम को एक घण्टा पढ़ाना तुम्हारा काम है—दिन रात उसके साथ लगे क्यों रहते हो। आजकल वह माँ-बाप को भी नहीं पूछता। वह कैसी शिक्षा पा रहा है? पहले जो लड़का माँ के नाम से एक-दम नाच उठता था, आज तो वह बुलाने पर मिलता भी नहीं। मेरा वेणु बड़े घर का लड़का है, उसके साथ तुम्हारा इतना मेल-जोल किस मतलब से है?"

एक दिन रतिकान्त अधरबाबू को बताने लगा कि, मैं तीन-चार ऐसे लोगों को जानता हूँ, जो बड़े आदमियों के घर लड़के पढ़ाने के लिए आये और मास्टरी करते-करते उन्होंने लड़कों का मन इस तरह अपने वश में कर लिया कि, लड़के जब सम्पत्ति के मालिक बने, तब वे ही सब कुछ होकर लड़कों को अपनी ही इच्छानुसार जीवन-पथ में चलाने लगे। ये बातें हरलाल को ही लक्ष्य में रखकर कही जा रही थीं, इसे हरलाल समझ गया। फिर भी, वह चुप ही रहा, शान्त बना रहा। किन्तु आज वेणु की माँ की बात सुनकर उसका हृदय टूट गया। वह समझ गया कि बड़े आदमी के घर में मास्टर की उपाधि क्या चीज है! गो-गृह में लड़के को दूध जुटाने के लिए जिस तरह गाय रहती है, उसी प्रकार उसको विद्या जुटा देने के लिए एक मास्टर भी रखा गया है। छात्र के साथ स्नेहपूर्ण आत्मीयता का सम्बन्ध स्थापित करना एक इतनी बड़ी स्पर्धा है कि, घर के नौकर से लेकर गृहिणी तक कोई भी उसे सह नहीं सकता।

हरलाल ने काँपते हुए स्वर से कहा—"माँ, अब से मैं वेणु को केवल पढ़ाऊँगा, उसके साथ मेरा और कोई सम्पर्क नहीं रहेगा।"

उस दिन, जिस समय वेणु के साथ हरलाल के खेलने की घड़ी आ गयी, उस समय हरलाल कालेज से लौटा ही नहीं। किस तरह इधर-उधर घूमते हुए उसने समय बिता दिया, उसे वही जानता था। संध्या हो जाने पर जब वह पढ़ाने आया, तब वेणु मुँह लटकाये रहा। हरलाल अपनी अनुपस्थिति की कोई जवाबदेही न देकर पढ़ाने लगा। उस दिन पढ़ाई सुविधानुसार बिलकुल ही नहीं हुई।

हरलाल प्रति दिन शेषरात्रि में उठकर अपनी कोठरी में पढ़ने लगता था। वेणु सबेरे नींद से जागकर तुरन्त ही हाथ मुँह धोकर उसके पास झटपट पहुँच जाता था। बगीचे में जो पक्की टंकी थी, उसमें मछलियाँ थीं। उन्हें फरुही खिलाना इन लोगों का एक काम था। बगीचे के एक कोने में कुछ पत्थर सजाकर छोटे-छोटे रास्ते, छोटे-छोटे फाटक और घेरे तैयार कर, वेणु ने बालखिल्य ऋषि के आश्रम के उपयुक्त एक अत्यन्त छोटा बाग तैयार किया था। उस बाग में माली का कोई अधिकार नहीं था। सबेरे इस बगीचे की परिचर्या करना इनका दूसरा काम था। इसके बाद धूप तेज हो जाने पर, घर लौट कर वेणु हरलाल के पास पढ़ने के लिए पहुँच जाता था। कल शाम को जिस कहानी का अंश सुनना बाकी रह गया था, उसे ही सुनने के लिए आज वेणु यथासाध्य भोर में ही उठकर बाहर चला आया था। उसने यही समझा था कि, भोर में उठकर उसने आज मास्टर साहब पर शायद विजय प्राप्त कर ली है। पर कमरे में आने पर उसने देखा कि, मास्टर साहब नहीं हैं। दरवान से पूछने पर मालूम हुआ कि, वे बाहर चले गये हैं।

दूसरे दिन भी सबेरे पढ़ते समय, वेणु अपने छोटे हृदय की वेदना लेकर मुँह गम्भीर बनाये रहा। भोर में ही किस अभिप्राय से हरलाल

बाहर चला गया था, इसे उसने पूछा तक भी नहीं। हरलाल वेणु के चेहरे की तरफ नजर न डालकर, पुस्तक के पन्ने के ऊपर दृष्टि जमाये पढ़ाता रहा। वेणु मकान के अन्दर अपनी माँ के पास जब खाने बैठा, तब उसकी माँ ने पूछा—"कल सन्ध्या से ही तुझे क्या हो गया है? बता तो भला? मुँह लटकाये क्यों रहता है—अच्छी तरह तू खा भी नहीं रहा है—बात क्या है? वेणु ने कोई उत्तर नहीं दिया। भोजन के बाद, माँ उसको अपने पास बैठाकर, उसके शरीर पर हाथ सहलाते सहलाते बहुत ही आदर के साथ जब बार-म्बार उससे प्रश्न करने लगी, तब वह स्थिर न रह सका। फूट-फूट कर रोने लगा। बोला—"मास्टर साहब—"

माँ ने कहा—मास्टर साहब क्या?"

वेणु कुछ भी न बता सका कि, मास्टर साहब ने क्या किया है। अभियोग क्या है, यह भाषा में व्यक्त करना कठिन था।

ननीबाला ने कहा—"शायद मास्टर साहब ने तेरी माँ की तुझसे कोई शिकायत की है?"

इस बात का कोई भी अर्थ न समझ कर, कोई भी उत्तर न देकर वह चला गया।

५

इसी बीच मकान में अधरबाबू के कुछ कपड़ों की चोरी हो गयी। पुलिस में खबर दी गयी। पुलिस वालों ने तलाशी करते समय हरलाल के बक्स को भी देखना न छोड़ा। रतिकान्त ने

नितान्त निरीह भाव से कहा—"जिसने लिया होगा। उसने क्या माल बक्स में छोड़ रक्खा होगा?"

माल का कोई पता नहीं लगा। ऐसा नुकसान अधरलाल के लिए असहनीय हो उठा। वे सारी दुनियाँ के लोगों पर बिगड़ उठे। रतिकान्त ने कहा—इस मकान में बहुत से लोग हैं, किस-पर सन्देह कीजियेगा! किसको दोष दीजियेगा! जिसकी जब खुशी होती है, आता जाता है।"

अधरलाल ने मास्टर को बुला कर कहा—"देखो हरलाल, तुम लोगों में से किसी को भी घर में रखना मेरे लिए सुविधाजनक नहीं है। अब से तुम दूसरी जगह अपना स्थान ठीक कर लो, वहीं रहना, और ठीक समय पर वेणु को रोज पढ़ा जाना। ऐसा होने से ही अच्छा होगा—यहाँ तक कि मैं तुम्हारे वेतन में दो रुपये वृद्धि करने को राजी हूँ।"

रतिकान्त ने तमाखू पीते-पीते कहा—"यह तो बहुत ही अच्छी बात है। हम दोनों ही पक्ष के लोगों के लिए ठीक है।"

हरलाल ने सर झुकाये सुन लिया। उस समय कुछ भी न बोल सका। अपने कमरे में आकर उसने एक चिट्ठी लिखकर अधरबाबू के पास भेज दी। विविध कारणों से वेणु को पढ़ाना उसके लिए सुविधाजनक न होगा, इसलिये वह सदा के लिये बिदाई ले रहा है।

उस दिन वेणु ने स्कूल से अपने घर लौटने पर देखा कि, मास्टर साहब का कमरा खाली है। उनकी वह टूटी-फूटी सी टीन की पिटारी भी उसमें नहीं है। रस्सी के ऊपर उनकी चादर और अँगोछी झूलती रहती थी, वह रस्सी तो है, किन्तु चादर और अँगौछी का पता नहीं है। टेबिल के ऊपर कापी-कागज और पुस्तकें इधर-उधर बिखरी पड़ी रहती थीं, उनके बदले में वहाँ एक बड़ी बोतल के भीतर सुनहली मछली भक-भक करती हुई नीचे-ऊपर चढ़ती-

उतरती दिखाई पड़ रही है। बोतल के ऊपर मास्टर साहब के हस्ताक्षर से, वेणु का नाम लिखा एक कागज का चिट सटा हुआ है। एक अच्छी जिल्ददार अँग्रेजी चित्र-पुस्तक पड़ी हुई है। उसके भीतरी पन्ने पर एक दो स्थान पर वेणु का नाम लिखा हुआ है, और उसी के नीचे आज की तारीख, मास और सन लिखा हुआ है।

दौड़ता हुआ अपने पिता के पास जाकर वेणु ने पूछा—"बाबूजी, मास्टर साहब कहाँ चले गये?"

पिता ने उसको अपने पास खींच कर कहा—"वे काम छोड़कर चले गये।"

वेणु पिता का हाथ छुड़ा, बगल की कोठरी में जाकर बिछावन पर गिर, सिसक सिसक कर रोने लगा। अधर बाबू व्याकुल हो उठे, क्या करना चाहिये इसका निश्चय ही न कर सके।

दूसरे दिन साढ़े दस बजे हरलाल एक 'मेस' की कोठरी में चौकी पर अनमने भाव से बैठा हुआ, इसी विचार में डूबा हुआ था कि आज कालेज में जाना चाहिये या नहीं। उसी समय अकस्मात् उसने देखा कि, पहले अधर बाबू के दरवान ने कमरे में प्रवेश किया और उसके ही पीछे वेणु आ धमका है। आने के साथ ही वह हरलाल के गले से लिपट गया। हरलाल के गले की आवाज रुँध गयी। कुछ बोलने के पूर्व ही आँखों से आँसू झरने लगे। बोलना चाहकर भी वह बोल नहीं पा रहा था।

वेणु ने कहा—"मास्टर साहब, मेरे घर लौट चलिये।"

वेणु अपने घर के बूढ़े दरवान चन्द्रभान को पकड़कर जिद कर रहा था कि, जिस तरह भी क्यों न हो, मास्टर साहब को घर ले जाना ही पड़ेगा।

किस कारण हरलाल के लिए वेणु के घर जाना एकदम असम्भव है, यह बात वह न कह सका—न जा सका। वेणु ने उसके गले से

लिपट कर उससे जो यह कहा था कि—"घर लौट चलो"—यह स्पर्श और इस बात की स्मृति ने कितनी ही रातों को उसके गले को जकड़ रखा था। उसे उस समय ऐसा जान पड़ता था मानो श्वास-प्रतिश्वास ही बन्द हो जायगी। किन्तु धीरे-धीरे सभी स्मृतियाँ क्षीण होते-होते एकदम निःशेष हो गयीं। दोनों ही पक्ष के लोग सब कुछ भूल-से गये। सारी बातें समाप्त हो गयीं। छाती की शिराओं को जकड़ने वाली वेदना-निशाचरी, चमगादड़ की तरह अब झूलती नहीं रही।



६

हरलाल विशेष चेष्टा करके भी अपनी पढ़ाई में अच्छी तरह मन न लगा सका। वह किसी प्रकार भी स्थिर भाव से पढ़ने के लिए बैठ नहीं सकता था। जरा भी पढ़ने की चेष्टा करते ही वह अव्यवस्थित होकर पुस्तक बन्द कर देता और अकारण ही सड़क पर जा, तेजी से टहलने लगता था। कुछ समय बाद वापस आता था। कालेज में लेक्चर के नोट लिखते समय कभी-कभी बड़ी-बड़ी भूलें हो जाया करती थीं, और जब-तब जो कुछ टेढ़े-मेढ़े दाग पड़ जाते थे, उनके साथ प्राचीन इजिप्ट (मिस्र) की चित्रलिपि के अतिरिक्त और किसी वर्णमाला की समता नहीं हो सकती थी।

हरलाल समझ गया कि, ये सब लक्षण अच्छे नहीं हैं। परीक्षा में यदि वह किसी तरह पास भी हो जायगा तो छात्रवृत्ति पाने की सम्भावना नहीं रहेगी। छात्रवृत्ति न मिलने से कलकत्ते में उसका एक दिन भी रहना न हो सकेगा। उधर घर पर माँ के पास भी दस-पाँच रुपये

भेजते रहने की जरूरत है। तरह-तरह की चिन्ताओं में पड़कर वह नौकरी की चेष्टा में घर से निकल पड़ा। नौकरी मिलना कठिन है, किन्तु न मिलना उसके लिए और भी कठिन है। इस कारण आशा छोड़कर भी वह आशा न त्याग सका।

सौभाग्यवश हरलाल उम्मेदवार बनकर एक बड़े अंग्रेज सौदागर के आफिस में जा पहुँचा। हठात् बड़े साहब की नजर उसपर पड़ गयी। साहब को विश्वास था कि, वह चेहरा देखकर मनुष्य की प्रकृति पहचान सकता है। हरलाल को बुलाकर, उसके साथ दो-चार बातें कर उन्होंने मन-ही-मन कहा—"यह आदमी काम का है।"

उन्होंने हरलाल से पूछा—"काम की कुछ पूर्व जानकारी है?"

हरलाल ने कहा—"नहीं।"

"जमानत दे सकते हो?"

इसका भी उत्तर मिला—"नहीं।"

"किसी बड़े आदमी के यहाँ से सार्टिफिकेट ला सकते हो?"

"किसी भी बड़े आदमी को मैं नहीं जानता।"

सुनकर साहब मानो और भी प्रसन्न होकर बोले—"अच्छी बात है। तुम पचीस रुपये मासिक वेतन पर काम शुरू करो। काम सीख लेने पर पदोन्नति होगी।" इसके बाद उसकी वेश-भूषा की तरफ देखकर साहब ने कहा—"पन्द्रह रुपये अग्रिम तुमको दे रहा हूँ, आफिस के लिए उपयुक्त पोशाक बनवा लेना।"

पोशाक बन गयी, हरलाल आफिस भी जाने लगा। बड़े साहब उससे भूत की तरह काम लेने लगे। दूसरे कर्मचारियों के घर चले जाने पर भी हरलाल को छुट्टी नहीं मिलती थी। किसी-किसी दिन साहब के घर जाकर भी उसे काम समझा आना पड़ता था।

इसप्रकार काम सीख लेने में हरलाल को देर नहीं लगी। उसके सहयोगी कर्मचारी उसे धोखा देने की चेष्टा करते रहते। ऊपर

के अफसरों के यहाँ इधर-उधर की शिकायतभरी बातें भी किया करते थे, किन्तु इस चुपचाप रहने वाले निरीह सामान्य व्यक्ति हरलाल का वे कुछ भी अनिष्ट न कर सके।

जब उसका वेतन बढ़कर पचीस से चालीस रुपये तक पहुँच गया, तब हरलाल गाँव से अपनी माँ को ले आया, और एक छोटी गली में छोटा सा मकान किराये पर ले लिया। इतने दिनों के बाद उसकी माँ का दुःख दूर हुआ। माँ ने कहा—"बेटा, अब तो तेरे लिये बहू घर में लाऊँगी।"

हरलाल ने माँ के पैरों की धूल लेकर कहा—"माँ, इसके लिए तो मुझे माफ करना पड़ेगा।"

माता का एक और अनुरोध था। उन्होंने कहा—"तू दिन-रात अपने जिस छात्र वेणु गोपाल के सम्बन्ध में बातें करता रहता है, उसको एक बार निमन्त्रण देकर अपने घर लाकर खिला। उसको देखने की मेरी बहुत इच्छा है।"

हरलाल ने कहा—"माँ, यह मकान उसके उपयुक्त नहीं है। ठहरो, एक बड़ा मकान किराये पर लेता हूँ, इसके बाद उसको निमन्त्रण देकर बुलाऊँगा।"





हरलाल की वेतन-वृद्धि के साथ ही, छोटी गली से बड़ी गली में और छोटे मकान से बड़े मकान में उसका वासस्थान बदल गया। फिर भी, मालूम नहीं किस कारण से, अधरलाल के घर जाने या

वेणु को अपने घर बुला लाने के लिए, वह किसी तरह भी अपने मन को स्थिर न कर सका।

शायद किसी दिन भी उसका संकोच दूर न होता, लेकिन अकस्मात् खबर मिली कि वेणु की माँ की मृत्यु हो गयी। सुनकर क्षणभर भी विलम्ब न कर, वह अधरलाल के घर जा पहुँचा।

इन दोनों वयस्क मित्रों में बहुत दिनों के बाद फिर मुलाकात हुई, किन्तु अब पूर्व समय जैसी अवस्था नहीं रही। वेणु अब सयाना हो चला है, अँगूठे और तर्जनी के सहयोग से वह अपनी नयी मूँछ पर ताव देने लगा है। चाल-चलन में बाबूगिरी घुस पड़ी है। अब उसको उपयुक्त इष्ट-मित्रों की भी कमी नहीं है। फोनोग्राफ पर थियेटरों की नटियों के अश्लील गान गाकर वह मित्र-मण्डली के आमोद-प्रमोद का ख्याल रखता है। पढ़ने के कमरे से वह पुराना स्टूल और दाग लगा टेबिल कहीं चला गया है। आइनों से, चित्रों से, असबाबों से कमरा मानो छाती फुलाये हुए है। वेणु अब भी कालेज जाता है किन्तु द्वितीय वर्ष की सीमा पार करने के लिए उसके मन में कोई आग्रह नहीं दिखाई पड़ता। पिता ने निश्चय कर लिया है कि दो-एक परीक्षाएँ पास कराकर, विवाह के बाजार में लड़के की बाजार-दर बढ़ा देंगे। किन्तु लड़के की माँ जानती थीं, और स्पष्ट शब्दों में कहा करती थीं—"मेरे लड़के को साधारण लोगों के लड़कों की तरह गौरवशाली प्रमाणित करने के लिए 'पास' का हिसाब न देना पड़ेगा—लोहे के सन्दूक में कम्पनी के कागज अक्षय बने रहें।" लड़का भी मन ही मन माता की इस बात को अच्छी तरह समझ गया था।

जो कुछ भी हो, हरलाल आज यह स्पष्ट रूप से समझ गया कि वेणु के लिए वह अब नितान्त अनावश्यक हो उठा है। रह-रहकर अकस्मात् उसे उस दिन की बात याद पड़ने लगी, जिस दिन हठात्

सबेरे ही वेणु ने उसके 'मेस' में जाकर उसके गले से लिपट कर कहा था—'मास्टर साहब, घर लौट चलो।' वह वेणु अब नहीं है। वह मकान नहीं है, अब मास्टर साहब को कौन बुलायेगा!

हरलाल ने सोचा था, वेणु को कभी-कभी अपने घर निमन्त्रण देकर बुलायेगा। किन्तु उसको बुलाने का अब कोई अवलम्ब उसे नहीं मिला। एक बार उसने सोचा—'उसको आने के लिए कहूँगा।' उसके बाद ही निश्चय किया—"इससे लाभ ही क्या है—शायद ही वेणु निमन्त्रण स्वीकार करे।"

हरलाल की माँ ने जिद्द नहीं छोड़ी। वे बार-बार कहने लगीं—"मैं अपने ही हाथों से रसोई पकाकर उसे खिलाऊँगी। ओह! बच्चे की माँ मर गयी है।"

अन्त में एक दिन हरलाल निमन्त्रण देने के लिये वेणु के घर पहुँचकर बोला—"तुम्हें ले जाने के लिये अधर बाबू से अनुमति लेने आया हूँ।"

वेणु ने कहा—"अनुमति लेने की कोई जरूरत नहीं है। आप क्या समझते हैं कि मैं अब भी निरा बच्चा ही हूँ।"

वेणु हरलाल के घर भोजन करने आया। माँ ने कीर्तिकेय जी की तरह सुन्दर इस बालक को अपनी दोनों स्निग्ध आँखों के आशीर्वाद से अभिषिक्त करके यत्नपूर्वक खिलाया। उनके मन में केवल यही ख्याल उठने लगा—"अहा! मृत्यु-शैया पर पड़ी, इसकी माँ, जब मर रही होगी तो इस छोटी उम्र के लड़के को देखकर कैसे उसके प्राण निकले होंगे?"

भोजन कर लेने के बाद ही वेणु ने कहा—"मास्टर साहब, मुझे आज कुछ जल्दी ही जाना पड़ेगा। मेरे दो-चार मित्रों के आने की बात है।"

यह कहकर पाकेट से सोने की घड़ी निकाल कर उसने समय

देखा। उसके बाद संक्षेप में विदा लेकर बग्घी पर सवार हो गया। हरलाल अपने मकान के दरवाजे पर खड़ा रहा। गाड़ी समूची गली को कम्पायमान करती हुई क्षणभर में दृष्टि से बाहर हो गयी।

माँ ने कहा—"हरलाल, उसे कभी-कभी बुला लाया कर। इस छोटी उम्र में उसकी माँ मर गयी है, यह याद पड़ते ही मेरा मन घबड़ाने लगता है।"

हरलाल चुप हो रहा। इस मातृहीन लड़के को सान्त्वना देने के लिए उसने कोई आवश्यकता नहीं समझी। लम्बी साँस लेकर वह मन ही मन बोला—"बस, इसके आगे अब कुछ न होगा। अब उसे कभी न बुलाऊँगा। एक दिन पाँच रुपये मासिक वेतन पर मैंने मास्टरी तो जरूर की थी—किन्तु, मैं सामान्य हरलाल मात्र हूँ।"





एक दिन सन्ध्या के बाद हरलाल ने आफिस से लौट आने पर देखा कि, पहली मञ्जिल के उसके कमरे में, अन्धकार में कोई बैठा हुआ है। वहाँ कोई मनुष्य बैठा है, इसपर लक्ष्य किये बिना ही वह शायद ऊपर चला जाता, किन्तु दरवाजे के भीतर घुसते ही उसने तीव्र एसेन्स की गन्ध का अनुभव किया और ठिठक गया।

हरलाल ने पूछा—"कौन है जी?"

वेणु बोल उठा—"मैं हूँ मास्टर साहब।"

हरलाल ने कहा—"यह कैसी बात है। तुम कब आये?"

वेणु ने कहा—"बहुत देर से आया हूँ। आप इतनी देर करके आफिस से लौटते हैं यह तो मैं नहीं जानता था।"

बहुत दिन हुए, वह जब निमन्त्रण खाकर चला गया था, उसके बाद एक बार भी वेणु इस मकान में नहीं आया था। कोई बात नहीं, कोई खबर नहीं। आज हठात् इस तरह इस अँधेरी कोठरी में वह प्रतीक्षा करता हुआ बैठा है, यह देखकर हरलाल का मन उद्विग्न हो उठा।

ऊपर के कमरे में जा, बत्ती जलाकर दोनों बैठ गये। हरलाल ने पूछा—"सब ठीक-ठाक तो है ? कोई विशेष समाचार है ?"

वेणु ने कहा—पढ़ना अब उसके लिए बहुत ही कष्टजनक काम हो गया है। इस एक ही काम से चित्त उचट गया है। आखिर सेकेण्ड इयर में ही कितने वर्ष रुका रहूँगा। उसकी अपेक्षा बहुत कम उम्र के लड़कों से साथ उसे पढ़ना पढ़ता है। उसे बहुत ही लज्जा लगती है। किन्तु पिता जी किसी तरह भी नहीं समझते।

हरलाल ने पूछा—"तुम्हारी इच्छा क्या है ?"

वेणु ने कहा—इच्छा विलायत जाने की है। वहाँ से बैरिस्टर बनकर आना चाहता हूँ। एक लड़का मेरे साथ पढ़ता है, यहाँ तक कि पढ़ने में वह मुझसे बहुत कमजोर है, फिर भी उसका विलायत जाना निश्चित हो गया है।

हरलाल ने कहा—"अपने बाबू जी से तुमने अपनी इच्छा बता दी है ?"

वेणु ने कहा—"बता दी है। बाबू जी कहते हैं कि परीक्षा में पास न होने से, वे विलायत जाने के प्रस्ताव पर ध्यान न देंगे। किन्तु मेरा मन उद्विग्न हो गया है—यहाँ रहने से मैं किसी तरह भी पास न हो सकूँगा।"

हरलाल चुपचाप बैठा हुआ सोचने लगा। वेणु ने कहा—"आज इसी बात को लेकर बाबूजी ने जो भी मुँह से निकला, कह दिया है। इसीलिए मैं घर छोड़कर चला आया हूँ। माँ रहतीं, तो

ऐसी हालत कभी न होने पाती।" कहते-कहते वह अभिमान से रोने लगा।

हरलाल ने कहा—"चलो मैं तुमको अपने साथ लेकर तुम्हारे बाबूजी के पास चलता हूँ। परामर्श करके जो अच्छा समझा जायगा, वही किया जायगा।"

वेणु ने कहा—"नहीं, मैं वहाँ नहीं जाऊँगा।"

पिता के साथ झगड़ा करके वेणु हरलाल के घर आकर रहेगा, यह बात हरलाल को बिलकुल ही अच्छी नहीं लगी। फिर भी 'तुम मेरे घर न रह सकोगे', यह बात कहना भी बहुत कठिन था।

हरलाल ने सोचा—थोड़ी देर बाद इसका मन कुछ ठण्ढा हो जाते ही इसको फुसलाकर घर ले जाऊँगा।

उसने पूछा—"तुम खाकर आये हो?"

वेणु ने कहा—"नहीं, मुझे भूख नहीं है, मैं आज नहीं खाऊँगा।"

हरलाल ने कहा—"यह कैसे हो सकता है।"

झटपट उसने माँ के पास जाकर कहा—"माँ, वेणु आया है, उसके लिए कुछ भोजन चाहिये।"

सुनकर माँ बहुत ही प्रसन्न होकर भोजन तैयार करने चली गयी। हरलाल आफिस का कपड़ा उतार कर, हाथ-मुँह धो वेणु के पास आ बैठा। जरा खाँस कर, कुछ इधर-उधर करके, उसने वेणु के कन्धे पर हाथ रखकर कहा—"वेणु, यह काम अच्छा नहीं हो रहा है। पिता से झगड़ा करके घर से चले आना, यह तुम्हारे लिए शोभनीय नहीं।"

सुनकर वेणु उसी क्षण बिछौना छोड़कर उठ खड़ा हुआ और बोला—"आपके यहाँ मेरा रहना यदि सुविधाजनक न हो, तो मैं सतीश के घर चला जाऊँगा।"

यह कहकर वह चले जाने को तैयार हो गया। हरलाल ने उसका हाथ पकड़ कर कहा—"ठहरो, कुछ खाकर जाना।"

वेणु ने क्रुद्ध होकर कहा—"नहीं, मैं खा न सकूँगा।" और हाथ छुड़ाकर वह कमरे से बाहर चला आया।

ऐसे ही समय में, हरलाल के लिए जो जलपान-सामग्री बनी थी, उसे ही वेणु के लिए थाली में सजाकर, माँ उसके सामने उपस्थित हो गयीं। बोलीं—"कहाँ जा रहे हो बेटा।"

वेणु ने कहा—"मुझे काम है, इसलिये जा रहा हूँ।"

"ऐसा कैसे हो सकता है बेटा, तुम कुछ खाये बिना जा न सकोगे।" और हठात् उसका हाथ पकड़ कर उन्होंने उसे खाने के लिए बैठा दिया।

वेणु का क्रोध शान्त नहीं हुआ था, अतएव कुछ खा नहीं रहा था। ग्रास उठाता, पर मुँह में न लेजाकर इधर-उधर केवल बिखेर रहा था। ऐसे ही समय में दरवाजे के पास एक गाड़ी आकर रुक गयी। पहले एक दरवान आया, उसके पीछे स्वयं अधर बाबू मच्-मच् शब्दों के साथ सीढ़ियों से ऊपर चढ़ आये। वेणु का चेहरा फीका पड़ गया।

माँ कोठरी में खिसक गयीं। अधर ने लड़के के सामने आकर, क्रोध से काँपते हुए गले से हरलाल की तरफ देखते हुए कहा—"बात सच निकली। रतिकान्त ने मुझे उसी समय बताया था, किन्तु तुम्हारे मन में ऐसी गूढ़ इच्छा है, इसपर मैंने विश्वास नहीं किया था। तुमने सोचा है कि वेणु को अपने वश में करके उसकी गरदन जिधर चाहो इच्छानुसार मरोड़ दोगे, किन्तु मैं ऐसा न होने दूँगा। तुम लड़का-चोर हो। मैं तुम पर पुलिस-केस करूँगा—तुमको जेल भेज कर ही दम लूँगा।

यह कहते हुए वेणु की ओर दृष्टिपात कर उन्होंने कहा—"चल !

उठ !" वेणु कोई भी बात न कहकर अपने पिता के पीछे-पीछे चला गया।



६

इस बार हरलाल का दफ्तर किसी अज्ञात कारण से, मुफस्सिल से प्रचुर परिमाण में चावल-दाल खरीदने पर तत्पर हो गया है। इस कार्य के उपलक्ष्य में हरलाल को प्रति सप्ताह, सात-साठ हजार रुपये लेकर मुफस्सिल में जाना पड़ता था। थोक खरीदारों को हाथों-हाथ दाम चुका देने के लिए मुफस्सिल के एक विशेष केन्द्र में उन लोगों का जो दफ्तर है, वहाँ दस और पाँच रुपये के नोट तथा नकद रुपये लेकर वह जाता था। वहाँ रसीद और खाता देखकर पिछले हफ्ते का कुल हिसाब मिलाकर, वर्तमान सप्ताह का काम चलाने के लिए वह रुपया रख आता था। उसके साथ आफिस के दो दरवान रहते थे। हरलाल की कोई जमानत नहीं है, इस आशय की चर्चा आफिस में हो चुकी थी, किन्तु बड़े साहब ने अपने ऊपर सारा भार लेकर कहा था—हरलाल की जमानत की कोई जरूरत नहीं।

माघ मास से इस प्रकार काम चल रहा है। चैत तक इसके चलते रहने की सम्भावना है। इस विषय को लेकर हरलाल विशेष व्यस्त था। प्रायः ही उसे बड़ी रात को आफिस से लौटना पड़ता था।

एक दिन ऐसी ही रात्रि में घर लौटने पर उसने सुना कि वेणु आया था, माँ ने उसे खिलाकर आदर के साथ बैठाया था। उस दिन उसके साथ बातचीत और गप्प-सप्प करके, उसके प्रति उनका मन और भी स्नेह से आकर्षित हो गया है।

इसी तरह उसका आना-जाना धीरे-धीरे बढ़ने लगा। एक दिन माँ ने हरलाल से कहा—"माँ के गत हो जाने के कारण ही, वहाँ उसका मन नहीं लगता। मैं वेणु को तेरे छोटे भाई की तरह, अपने ही लड़के की तरह मानती हूँ। वही स्नेह पाकर मुझे केवल माँ कहकर पुकारने के लिए वह यहाँ आता है।" यह कहकर अपने आँचल के छोर से उन्होंने अपनी आँखें पोंछ डालीं।

एक दिन वेणु के साथ हरलाल की मुलाकात हो ही गयी। वस्तुतः उस दिन वह प्रतीक्षा में बैठा हुआ था। बड़ी रात तक वार्तालाप होता रहा। वेणु ने कहा—"बाबू जी का स्वभाव आजकल ऐसा हो गया है कि मैं किसी तरह भी घर पर टिक नहीं सकता। विशेषतः मैं यह सुन रहा हूँ कि वे विवाह करने की तैयारी कर रहे हैं। रति बाबू ने विवाह सम्बन्ध ठीक कर लिया है—उनके साथ बराबर परामर्श चलता रहता है। पहले कहीं भी जाकर मैं देर करता था तो बाबू जी व्याकुल हो जाते थे। अब यदि मैं दो-चार दिन घर न भी लौटूँ तो वे आराम अनुभव करते हैं। मेरे घर पर रहने से विवाह की आलोचना सतर्कता के साथ करनी पड़ती है, इस कारण मेरे न रहने से ही वे बला से बच जाते हैं। यदि यह विवाह होगा, तो मैं घर पर न रह सकूँगा। आप मुझे उद्धार का एक कोई बताइये, मैं स्वतन्त्र होना चाहता हूँ।"

स्नेह और वेदना से हरलाल का हृदय परिपूर्ण हो उठा। सङ्कट-काल में, और सभी को छोड़कर वेणु अपने पुराने मास्टर साहब के पास आया है। इस बात से, कष्ट के साथ-साथ उसको आनन्द प्राप्त हुआ। किन्तु मास्टर साहब में सामर्थ्य ही कितनी है!

वेणु ने कहा—"जिस तरह भी हो, विलायत जाकर बैरिस्टर बनकर आ जाने से मैं इस विपद से परित्राण पा सकूँगा।"

हरलाल ने कहा—"अधर बाबू क्या जाने देंगे?"

वेणु ने कहा—"मेरे चले जाने से वे बच जायँगे। किन्तु रुपये पर उनकी जैसी माया है, उसे देखते हुए यही कहना पड़ता है कि उनसे विलायत का खर्च वसूल नहीं होगा। इसके लिए कुछ उपाय करना ही पड़ेगा।"

हरलाल वेणु की दूरदर्शिता पर हँस पड़ा और बोला—"कैसा उपाय?"

वेणु ने कहा—"मैं हैण्डनोट पर रुपया कर्ज लूँगा। महाजन मेरे ऊपर दावा करेगा तो बाबू जी बाध्य होकर ऋण की भरपाई करेंगे। उन्हीं रुपयों से मैं भाग कर विलायत जाऊँगा। वहाँ जाने पर वे खर्च अवश्य देंगे, चुप रह न सकेंगे।"

हरलाल ने कहा—"तुमको रुपया कौन कर्ज में देगा?"

वेणु ने कहा—"आप नहीं दे सकते?"

हरलाल ने आश्चर्य में पड़कर कहा—"मैं!" उसके मुँह से और कोई बात नहीं निकली।

वेणु ने कहा—"क्यों, आपका दरवान तो तोड़े में बहुत रुपये घर ले आया है।"

हरलाल ने कहा—"वह दरवान भी जैसा मेरा है, रुपया भी वैसा ही है।"

आफिस के रुपये का व्यवहार कैसे और कहाँ होता है, यह उसे उसने समझा दिया। यह रुपया केवल एक रात के लिए दरिद्र के घर में आश्रय लेता है, प्रभात हो जाने पर दस दिशाओं में गमन करता है।

वेणु ने कहा—"आप के साहब क्या मुझे ऋण नहीं दे सकते। मैं उनको ब्याज अधिक दर से दूँगा।"

हरलाल ने कहा—"तुम्हारे पिता यदि सेक्युरिटी दें, तो उस हालत में वे मेरे अनुरोध पर शायद दे भी सकते हैं।"

वेणु ने कहा—"यदि बाबू जी सेक्युरिटी दे सकते हैं, तो रुपया क्यों नहीं दे सकते, यह जरा सोचने की बात है ?"

यह तर्क यहाँ ही बन्द हो गया। हरलाल मन ही मन सोचने लगा—'यदि मेरे पास कुछ रहता, तो जगह-जमीन घर-द्वार सब बेचकर रुपये दे देता।' किन्तु एकमात्र असुविधा यही है, कि जगह-जमीन घर-द्वार कुछ भी नहीं है।

१०

एक दिन शुक्रवार की रात को हरलाल के मकान के सामने एक बग्घी आ खड़ी हुई। वेणु के गाड़ी से उतरते ही, हरलाल के दफ्तर का दरवान एक लम्बी सलाम करता हुआ, दौड़कर बाबू को खबर देने गया। उस समय हरलाल अपने सोने के कमरे में, फर्श पर बैठकर रुपये का हिसाब मिला रहा था। वेणु ने उसी कमरे में प्रवेश किया। आज उसका वेश कुछ अजीबोगरीब है। बङ्गाली धोती-चादर के स्थान पर, उसने पारसी कोट तथा पतलून चढ़ा रखा है। सर पर टोपी शोभायमान है। उसके दोनों हाथों की अँगुलियों में मणि-मोती-माणिक की अँगूठियाँ चमक रही हैं। गले से लटकती हुई सोने की मोटी सिकड़ी में आबद्ध घड़ी, छाती के पाकेट में पड़ी हुई है। कोट की आस्तीन के भीतर से कमीज की बाँहों में हीरे के बटन दिखलाई पड़ रहे हैं।

हरलाल ने रुपये गिनना बन्द करके साश्चर्य प्रश्न किया—"यह कैसा ठाठ है। इतनी रात को इस वेश में आने का कारण ?"

वेणु ने कहा—"परसों बाबूजी का विवाह है। यह बात उन्होंने

मुझसे छिपा रक्खी है, किन्तु मुझे खबर मिल ही गयी। बाबू जी से मैंने कहा, मैं कुछ दिनों के लिए बैरकपुर के अपने बगीचे में जाऊँगा। सुनकर वे बहुत ही खुश होकर राजी हो गये, इसीलिए बगीचे जा रहा हूँ। इच्छा होती है कि, अब कभी न लौटूँ। साहस रहता तो गङ्गा जी में डूब कर प्राण दे देता।"

कहते-कहते वेणु रोने लगा। हरलाल की छाती में मानों सैकड़ों बर्छियाँ बिंध गयीं। एक अपरिचित स्त्री आकर वेणु की माँ का घर, माँ का खाट, माँ का स्थान अधिकार कर लेगी, तो उस हालत में वेणु का स्नेह-स्मृति-जड़ित मकान, वेणु के लिए कैसा कण्टकमय हो उठेगा, इसे हरलाल क्षणमात्र में समझ कर आवाक रह गया। मन ही मन उसने निश्चय किया कि, संसार में गरीब होकर न जन्म लेने से ही दुःख और अपमान का अन्त नहीं होता। वेणु को क्या कहकर सान्त्वना देनी चाहिये, इसे जब वह सोचने पर भी समझ न सका, तब वेणु का हाथ अपने हाथ में उसने ले लिया। लेने के साथ ही उसके अन्त में एक तर्क जाग उठा। उसने सोचा, ऐसी वेदनामय स्थिति में वेणु किसतरह ऐसी सजावट कर सका है।

वेणु को हरलाल के हृदय की बात समझने में देर न लगी। उनकी आवाक मुद्रा को देखकर उसने कहा—"ये अँगूठियाँ मेरी माँ की हैं।"

सुनकर हरलाल बड़े ही कष्ट से अपनी आँखों का आँसू सँभाल सका। कुछ क्षण बाद उसने कहा—"वेणु! तुम भोजन करके आये हो क्या?"

"जी हाँ—पर आप का भोजन नहीं हुआ है शायद!"

"रुपये गिन कर आयरन सेफ में रक्खे बिना मैं भोजन कर ही कैसे सकता हूँ।"

वेणु ने कहा—"आप भोजन कर आइये, आपके साथ बहुत बातें करनी हैं। मैं कमरे में ही रहूँगा, चिन्ता न कीजिये। जाइये, माँ भोजन परोस कर बैठी होंगी।"

हरलाल ने जरा हिचक कर कहा—"मैं झटपट खाकर आ रहा हूँ।"

हरलाल ने झटपट भोजन कर, माँ को साथ लेकर कमरे में प्रवेश किया। वेणु ने उनको प्रणाम किया। उन्होंने वेणु का चिबुक स्पर्श कर चुम्बन किया। हरलाल से पूरी खबर पाकर उनकी छाती मानो फटती जा रही थी। अपना समस्त स्नेह देकर भी वे वेणु के अभाव की पूर्ति न कर सकेंगी, इसी बात का दुःख उनको था।

चारो तरफ बिखरे हुए रुपयों के बीच तीनों व्यक्ति बैठ गये। वेणु के बचपन की घटनाओं के बारे में बातचीत चल पड़ी। मास्टर साहब के साथ उसके जीवन की अनेक दिनों की अनेक घटनाओं की याद आने लगी। बीच-बीच में वेणु की असंयत स्नेहमयी माँ की बातें भी याद आने लगीं। बातों-बातों में अधिक रात हो गयी। हठात् घड़ी की ओर दृष्टिपात कर वेणु ने कहा—"अब देर होने से गाड़ी छूट जायगी।"

हरलाल की माँ ने कहा—"बेटा, आज रात को यहीं रहो न। कल सबेरे हरलाल के साथ ही जाना।"

वेणु ने विनय के साथ कहा—"नहीं माँ, आप यह अनुरोध न कीजिये, आज रात को जैसे भी हो मुझे जाना पड़ेगा।"

हरलाल से उसने कहा—"मास्टर साहब! इस अँगूठी और घड़ी को बगीचे में ले जाना निरापद नहीं है। आपके ही पास इन्हें रख जाता हूँ। लौटने पर ले जाऊँगा। अपने दरवान से कह दीजिये, मेरी गाड़ी से चमड़े का हैण्डबेग ला दे। उसके ही अन्दर इन्हें रख दूँ।"

आफिस का दरवान गाड़ी से बैग ले आया। वेणु ने अपनी चेन, घड़ी, अँगूठी, बटन सब ही खोलकर बैग में भर दिया। सतर्क हरलाल ने उस बैग को लेकर उसी क्षण आयरन-सेफ में रख दिया।

वेणु ने हरलाल की माँ के चरणों की धूल ली। उन्होंने रुँधे स्वर से आशीर्वाद दिया—"माता जगदम्बा तुम्हारी माँ होकर तुम्हारी रक्षा करें।"

उसके बाद वेणु ने हरलाल के पैरो को छूकर प्रणाम किया। पहले किसी दिन उसने हरलाल को इस तरह प्रणाम नहीं किया था। हरलाल कोई भी बात न कह कर, उसकी पीठ पर हाथ रख उसके साथ-साथ नीचे उतर आया। गाड़ी की लालटेन में बत्ती जला दी गयी, दोनों घोड़े अधीर हो उठे। कलकत्ते जैसे लोक-खचित निशीथ में वेणु को लेकर गाड़ी अदृश्य हो गयी।

हरलाल अपने कमरे में आकर बड़ी देर तक चुपचाप बैठा रहा। उसके बाद एक लम्बी साँस छोड़, रुपया गिन-गिनकर पृथक-पृथक थैलियों में रखने लगा। जितने भी नोट थे, वे पहले ही गिने जाकर थैलियों में बन्द होकर लोहे के सन्दूक में पहुँच चुके थे।

११

लोहे के सन्दूक की चाभी सिरहाने के तकिये के नीचे रखकर, उस रुपये के कमरे में ही हरलाल रात को सो रहा। अच्छी नींद नहीं आयी। सपने में उसने देखा—वेणु की माँ परदे की ओट से ऊँचे स्वर से उसको तिरस्कार कर रही है; कोई भी बात स्पष्ट नहीं

सुनाई पड़ती, केवल उस अनिर्दिष्ट कण्ठ-स्वर के साथ-साथ, वेणु की माँ के चुन्नी-पन्ना-हीरे के अलङ्कारों से लाल-हरे रङ्ग की शुभ्र रश्मियाँ, काले परदे को फोड़कर बाहर होकर आन्दोलित हो रही हैं। हरलाल जी-जान से वेणु को बुलाने की चेष्टा कर रहा है, किन्तु उसके गले से किसी तरह स्वर नहीं निकल रहा है। ऐसे ही समय में प्रचण्ड शब्दों के साथ कोई चीज टूट कर परदे को फाड़कर नीचे गिर पड़ी। हरलाल चौंक पड़ा, आँखें खोलकर उसने देखा कि स्तूपाकार अन्धकार फैला हुआ है। हठात् हवा के एक झोंके ने खिड़की को ठेलकर बत्ती बुझा दी है। हरलाल का समूचा शरीर पसीने से भींग गया है। उसने झटपट उठकर बत्ती जलाई। घड़ी में उसने देखा—चार बज चुके हैं। सोने का समय अब नहीं है—रुपया लेकर मुफस्सिल जाने के लिए तैयार हो जाना चाहिये।

हरलाल मुँह धोकर लौटने लगा तो माँ ने अपने कमरे में से ही कहा—"क्या बेटा, तू जाग गया है?"

हरलाल ने प्रभात में माता का मङ्गल-मुख देखने के लिए कमरे में प्रवेश किया।

माँ ने उसका प्रणाम ग्रहण कर मन ही मन उसको आशीर्वाद देते हुए कहा—"बेटा मैं अभी-अभी सपना देख रही थी कि मानो तू अपनी बहू को लाने जा रहा है। भोर का सपना क्या झूठ हो जायगा!"

हरलाल ने हँसकर कमरे में प्रवेश किया। रुपयों और नोटों की थैलियों को सन्दूक से निकाल कर कैश-बक्स में बन्द करने का उद्योग करने लगा। अकस्मात् उसकी छाती का भीतरी भाग धड़क उठा। नोटों की दो-तीन थैलियाँ खाली पड़ी हुई थीं। मालूम हुआ कि सपना देख रहा है। थैलियों को लेकर उसने सन्दूक के ऊपर जोर से पटका। इस कृत्य से शून्य थैली की शून्यता अप्रमाणित नहीं हुई।

तो भी, व्यर्थ की आशा से थैलियों के बन्धन खोलकर उसने अच्छी तरह उन्हें झाड़ा। एक थैली के भीतर से दो चिट्ठियाँ निकलीं। वे वेणु के हाथ की लिखी हुई थीं। एक चिट्ठी उसने अपने पिता के नाम लिखी थी, दूसरी हरलाल के नाम।

झटपट खोलकर पढ़ने लगा। आँखें मानो देख नहीं सकीं। जान पड़ा जैसे प्रकाश यथेष्ट नहीं है। वह बार-बार बत्ती को उकसाने लगा। जो कुछ भी पढ़ता था, वह अच्छी तरह समझ में नहीं आता था।

बात यह है कि दस रुपये के तीन हजार के नोट लेकर वेणु ने विलायत-यात्रा की है। आज भोर में ही जहाज छूट जाने की बात है। हरलाल जिस समय भोजन करने चला गया था, उसी समय वेणु ने यह काण्ड कर डाला था। उसने पत्र में लिखा था—"बाबू जी को यह चिट्ठी दे रहा हूँ। वे मेरा यह ऋण चुका देंगे। इसके अतिरिक्त बैग में माँ के जितने भी गहने हैं, उनका दाम ठीक कितना होगा, मैं नहीं जानता, शायद तीन हजार रुपये से अधिक ही होगा। यदि मेरी माँ जीवित रहतीं तो बाबू जी मुझे विलायत जाने के लिए रुपया न भी देते, तो माँ निश्चय ही इन्हीं गहनों के द्वारा मेरा खर्च जुटा देतीं। मेरी माँ के गहने, बाबू जी और किसी को दे देंगे, यह तो मैं सह नहीं सकता था। इस कारण जैसे भी हो सका, मैंने ही उन्हें ले लिया। यदि बाबू जी रुपया देने में हिचकें, तो आप अनायास ही इन गहनों को बेचकर या बन्धक रखकर रुपया ले सकते हैं। ये मेरी ही माँ की चीजें हैं—इसलिए इनपर मेरा ही अधिकार है।" इनके अतिरिक्त और भी बहुत-सी बातें लिखी हुई थीं—वे निरर्थक और सारहीन थीं।

हरलाल कोठरी में ताला लगा, झटपट गङ्गा घाट की ओर दौड़ पड़ा। किस जहाज से वेणु जा रहा है, उसका नाम भी वह नहीं

जानता। वह मोटियाबुर्ज तक एक साँस में दौड़ता हुआ गया। वहाँ उसे पता लगा कि दो जहाज भोर में ही रवाना हो चुके हैं। दोनों ही इंग्लैण्ड गये हैं। वेणु किस जहाज में सवार है, यह भी उसके अनुमान के बाहर था, और उस जहाज को पकड़ने का उपाय क्या है, यह भी वह समझ न सका।

मोटियाबुर्ज से जब गाड़ी उसके मकान की तरफ लौटी, तब प्रभात की धूप से कलकत्ता शहर जाग उठा था। हरलाल की दृष्टि में यह सब कुछ दिखाई नहीं पड़ रहा था। उसका बुद्धि-भ्रष्ट अन्तः-करण, एक कलेवरहीन कष्टकर प्रतिकूलता को मानो अपनी परिपूर्ण शक्ति से ठेलता जा रहा था—किन्तु कहीं भी एक तिल भी उसे डिगा देने में समर्थ नहीं हो रहा था।

जिस गृह में उसकी माँ रहती हैं, जिस गृह में अब तक कदम रखते ही कर्मक्षेत्र की समस्त क्लान्ति और सङ्घातों की उसकी सभी वेदनाएँ क्षणभर में दूर हो जाती रही हैं, उसी गृह के सामने गाड़ी आ खड़ी हुई—गाड़ीवान का भाड़ा चुकाकर उसी गृह में वह अपरि-मित नैराश्य और भय लेकर प्रवेश कर गया।

माँ उद्विग्न होकर बरामदे में खड़ी थीं। उन्होंने पूछा—"बेटा, तू कहाँ गया था?"

हरलाल बोल उठा—"माँ, मैं तुम्हारे लिए बहू लाने गया था।" यह कहकर सूखे कण्ठ से हँसते-हँसते वह उसी जगह मूर्च्छित होकर गिर पड़ा।

"अरी माँ, यह क्या हो गया!" कहकर झटपट जल लाकर माँ उसके मुँह पर छींटें देने लगी।

थोड़ी देर बाद हरलाल आँखें खोलकर, शून्य दृष्टि से चारो तरफ देखकर उठ बैठा। हरलाल ने कहा—"माँ तुम लोग मत

घबड़ाओ। मुझे जरा अकेले रहने दो।" यह कहकर झटपट कमरे के भीतर प्रवेश कर अन्दर से दरवाजा बन्द कर लिया।

माँ दरवाजे के बाहर जमीन पर बैठ गयीं—फागुन की धूप उनके सभी अङ्गों पर गिर रही थी। वे बन्द दरवाजे से माथा टेककर, रह-रहकर पुकारने लगीं—"हरलाल, बेटा हरलाल।"

हरलाल ने कहा—"माँ, थोड़ी ही देर बाद मैं बाहर निकलूँगा, इस समय तुम जाओ।"

माँ उसी जगह धूप में बैठकर जप करने लगीं।

आफिस के दरवान ने आकर दरवाजा खटखटाया और बोला—"बाबू जल्दी कीजिये नहीं तो गाड़ी न मिलेगी।"

हरलाल ने अन्दर से कहा—"आज सात बजे की गाड़ी से जाना नहीं होगा।"

दरवान सिर हिलाता हुआ नीचे चला गया।

हरलाल सोचने लगा—"यह बात किससे कहूँ। यह तो सरासर चोरी है। क्या वेणु को जेल भेज दूँ?"

अकस्मात् उन गहनों की बात याद पड़ गयी। वह इस बात को बिलकुल ही भूल गया था। मालूम हुआ मानो, सहारा मिल गया। बैग खोलकर उसने देखा—उसमें केवल अँगूठी-घड़ी, बटन, हार ही नहीं हैं—ब्रासलेट, चिक, माँग का भूषण, मोती की माला इत्यादि और भी अनेक मूल्यवान गहने हैं। उनका दाम तीन हजार रुपये से अधिक होगा। किन्तु यह भी तो चोरी ही है। ये भी तो वेणु के नहीं हैं। यह बैग जबतक उसके घर में रहेगा, तबतक उसके सामने विपद मुँह बाये खड़ी रहेगी।

तब और देर न कर, अधर लाल का बैग और वेणु का पत्र लेकर हरलाल घर से निकल पड़ा।

माँ ने पूछा—"कहाँ जा रहे हो बेटा?"

हरलाल ने कहा—"अधर बाबू के घर।"

माँ की छाती से अनिर्दिष्ट भय का एक बहुत बड़ा बोझ हठात् उतर गया। उन्होंने सोचा, कल हरलाल ने जब से यह बात सुनी कि वेणु के पिता का ब्याह होने जा रहा है, उसी समय से लड़के का मन अशान्त हो उठा है, ओह! कितना प्यार करता है वह वेणु को।

माँ ने पूछा—"तो आज तुम्हारा मुफस्सिल जाना नहीं होगा?"

"नहीं।" यह कहने के साथ ही हरलाल त्वरित गति से घर से निकल पड़ा।

अधर बाबू के घर पहुँचने के पूर्व ही उसने दूर से, रोशन-चौकी का करुण स्वर में अलापना सुना। पास आया तो उसने अनुभव किया कि इस उत्सव के साथ ही मानो एक अशान्ति का लक्षण मिला हुआ है।

दरवान का कड़ा पहरा पड़ रहा है। घर से नौकर-चाकर कोई भी बाहर नहीं निकलने पाता—सभी के चेहरे पर भय और चिन्ता का आभास प्रकट है। हरलाल को खबर मिली—कल रात को रुपयों और गहनों की चोरी हो गयी है। नौकरों में से तीन-चार के ऊपर विशेष रूप से सन्देह करके पुलिस के हाथ सौंप देने की तैयारी हो रही है।

हरलाल ने दुमञ्जिले के बरामदे में जाकर देखा—अधर बाबू आग-बबूला होकर बैठे हुए हैं और रतिकान्त तमाखू पी रहा है। हरलाल ने कहा—"आपके साथ मैं एकान्त में कुछ बातें करना चाहता हूँ।"

अधर बाबू चिढ़ गये। बोले—"तुम्हारे साथ एकान्त में बातचीत करने का समय अभी मेरे पास नहीं है—जो कुछ कहना चाहते हो, यहीं कह डालो।"

उन्होंने पुनः सोचा—शायद हरलाल इस समय किसी तरह की सहायता या उधार माँगने आया हो, अतएव उन्होंने रतिकान्त को आँख से कुछ इशारा किया। रतिकान्त झटपट बोल उठा—"मेरे सामने यदि बाबू से कुछ कहने में आप को लज्जा लगती है, तो मैं चला जा रहा हूँ।"

अधर ने बनावटी क्रोध में कहा—"ओह ! बैठो न।"

पर रतिकान्त स्थिति की असलियत को समझ गया था—बिना कुछ उत्तर दिये वह चला गया।

हरलाल ने कहा—"कल रात को वेणु यह बैग मेरे घर छोड़ गया है।"

"बैग में क्या है ?"

हरलाल ने बैग खोलकर अधर बाबू के हाथ में पकड़ा दिया।

अधर बोला—मास्टर और छात्र दोनों ने एक साथ मिलकर अच्छा कारोबार आरम्भ किया है। तुम जानते ही थे कि चोरी का माल बेचने से पकड़े जाओगे, इसीलिए लाकर दे रहे हो। यही सोचा होगा कि साधुता के लिए बख्शीश पाओगे।"

तब हरलाल ने अधर की चिट्ठी उनके हाथ में दे दी। पढ़कर वे आगबबूला हो गये। बोले—मैं पुलिस में खबर देने जा रहा हूँ। मेरा लड़का अभी बालिग नहीं हुआ है। तुमने उसे बहका कर विलायत भेज दिया है। शायद पाँच सौ रुपये देकर तीन हजार रुपये का दस्तावेज तुमने लिखवा लिया है। मैं यह ऋण नहीं चुकाऊँगा।"

हरलाल ने कहा—"मैंने रुपया कर्ज में नहीं दिया है।"

अधर ने कहा—"तो उसको रुपया कहाँ से मिला। तुम्हारा बक्स तोड़कर उसने चुराया है ?"

इस प्रश्न का कोई भी उत्तर हरलाल ने नहीं दिया। रतिकान्त

मुसकुराता हुआ बोला—"उनसे आप पूछते क्यों नहीं ? तीन हजार रुपये क्यों, क्या उन्होंने कभी पाँच सौ रुपया भी देखा है ?"

जो कुछ भी हो, गहनों की चोरी की मीमांसा हो जाने के बाद ही, वेणु के विलायत भाग जाने के विषय में मकान में कोलाहल मच गया। हरलाल समस्त अपराध का भार अपने सिर पर लेकर उस मकान से बाहर हो गया।

जब वह सड़क पर आया तो उसका मन मानो निर्जीव-सा हो गया था। भय करने और चिन्ता करने की शक्ति भी तब उसमें नहीं रह गयी थी। इस घटना का परिणाम क्या हो सकता है, इसपर उसका मन कुछ भी न सोच सका।

गली में प्रवेश करते ही उसने देखा, उसके मकान के सामने एक गाड़ी खड़ी है। वह चौंक उठा। अकस्मात् उसके मन में आशा जाग उठी, वेणु वापस आ गया है। अवश्य वह वेणु ही होगा।

झटपट गाड़ी के पास जाकर उसने देखा। गाड़ी के अन्दर उनके ही आफिस का एक साहब बैठा हुआ है। साहब हरलाल को देखते ही गाड़ी से उतर पड़ा। फिर उसका हाथ पकड़ कर वह मकान के भीतर चला गया। वहाँ उसने पूछा—"आज तुम मुफस्सिल क्यों नहीं गये ?"

बात यह थी कि आफिस के दरवान को कुछ सन्देह हुआ तो उसने बड़े साहब को खबर दी—फलस्वरूप साहब आ धमके थे।

हरलाल ने कहा—"तीन हजार रुपये के नोटों का पता नहीं लग रहा है। वे मिल ही नहीं रहे हैं।"

साहब ने पूछा—"वे नोट कहाँ चले गये ?"

"मैं नहीं जानता"—ऐसा उत्तर भी हरलाल न दे सका। वह चुप हो रहा।

साहब ने कहा—"रुपये कहाँ हैं, चलो मैं देखूँगा।"

हरलाल उसको ऊपर के कमरे में ले गया। साहब ने सब गिनकर, फिर चारो तरफ ढूँढ़ कर देखा। मकान के सभी कमरों की एक-एक करके पूरी तलाशी ली। यह सारी कार्यवाही देखकर माँ स्थिर न रह सकीं। उन्होंने साहब के सामने ही बाहर निकल कर पूछा—"अरे हरलाल, क्या बात है रे?"

हरलाल ने कहा—"माँ! रुपयों की चोरी हो गयी है।"

माँ ने कहा—"चोरी कैसे हो सकती है। हरलाल, ऐसा सर्वनाश किसने कर दिया!"

हरलाल ने कहा—"माँ, तुम चुप रहो।"

सन्धान-कार्य समाप्त करके साहब ने पूछा—"इस कमरे में रात को कौन था?"

हरलाल ने कहा—"दरवाजा बन्द करके मैं अकेले ही सो रहा था—और कोई नहीं था।"

साहब ने रुपये गाड़ी पर रखकर हरलाल से कहा—"अच्छा, तुम बड़े साहब के पास चलो।"

हरलाल को साहब के साथ जाते देखकर माँ ने उनका रास्ता रोक कर कहा—"साहब, तुम मेरे लड़के को कहाँ ले जा रहे हो। मैंने उपवास करके इस लड़के को पाला-पोसा है। मेरा लड़का कभी दूसरे के रुपयों पर हाथ नहीं लगा सकता, यह मैं निश्चयपूर्वक कह सकती हूँ।

साहब उसकी बात कुछ भी न समझ सका। उसने केवल कहा—"अच्छा, अच्छा।"

"माँ, तुम क्यों घबड़ा रही हो? बड़े साहब के साथ भेंट कर मैं अभी आ रहा हूँ।" हरलाल ने कहा।

माँ ने उद्विग्न होकर कहा—"तुमने तो प्रातःकाल से ही कुछ भी नहीं खाया।"

इस बात का कोई भी उत्तर न देकर हरलाल गाड़ी पर चढ़कर चला गया। माँ हताश होकर अश्रु-प्रवाह करने लगीं।

बड़े साहब ने हरलाल से कहा—"सच-सच बताओ बात क्या है?"

"मैंने रुपया नहीं लिया है!" हरलाल ने कहा।

"मुझे तुम्हारे इस कथन पर पूरा विश्वास है। किन्तु तुम उसे अवश्य जानते हो जिसने लिया है?"

हरलाल कोई उत्तर न देकर मुँह झुकाये बैठा रहा।

"तुम्हारी जानकारी में ही किसी ने रुपये लिये हैं?" साहब ने कहा।

"मेरे शरीर में प्राण रहते मेरी जानकारी में कोई भी रुपये ले नहीं सकता।"

"देखो हरलाल, मैंने तुमपर विश्वास कर किसी तरह की जमानत के बिना ही तुमपर यह दायित्वपूर्ण काम सौंपा था। आफिस के सभी लोग विरोधी थे। तीन हजार रुपये कोई बड़ी रकम नहीं है। किन्तु तुम मुझे बड़ी ही लज्जा में डालोगे यदि वास्तविक बात न बताओगे। आज सारे दिन का समय मैं तुमको दे रहा हूँ। जैसे भी तुमसे हो सके, रुपये जुटा लाओ। यदि ऐसा कर सको तो, इस विषय को लेकर मैं कोई बात आगे न बढ़ाऊँगा। तुम जिसतरह काम कर रहे थे, उसी तरह करते रहोगे।"

यह कहकर साहब उठ पड़े। उस समय दिन के ग्यारह बज चुके थे। हरलाल जब सिर झुकाये बाहर चला गया, तब आफिस के बाबू लोग अति प्रसन्न होकर हरलाल के पतन के सम्बन्ध में आलोचना करने लगे।

हरलाल को एक दिन का समय मिला। नैराश्य की अन्तिम तली से कीचड़ उड़ेलने के लिए, एक और दीर्घ दिवस की अवधि बढ़ गयी।

उपाय क्या है, रास्ता क्या है, कैसे क्या करूँ—यही सोचते-सोचते तपती दुपहरी में हरलाल इधर-उँधर व्यर्थ चक्कर काटता रहा। अन्त में उपाय है या नहीं, यह चिन्ता समाप्त हो गयी। किन्तु अकारण ही राह में घूमना नहीं रुका। जो कलकत्ता नगर हजार-हजार लोगों का आश्रय-स्थान है, वही एक ही क्षण में हरलाल के लिए एक फँसा देने वाले यन्त्र की तरह भासित हुआ, जिसकी विनाशक परिधि के बाहर निकल जाने का कोई रास्ता ढूँढ़े नहीं मिल रहा है। समस्त जन-समाज इस अत्यन्त छोटे हरलाल को चारो तरफ से घेर कर खड़ा हो गया है। कोई उसको जानता भी नहीं है, और उसके प्रति किसी के मन में किसी तरह का विद्वेष भी नहीं है, किन्तु प्रत्येक व्यक्ति ही उसका शत्रु है। रास्ते के लोग उसके शरीर से सट कर उसकी बगल से चले जा रहे हैं। आफिस के बाबू लोग बाहर आकर जलपान कर रहे हैं। उसकी तरफ कोई भी नजर उठाकर नहीं देखता। मैदान के किनारे थका हुआ एक पथिक माथे के नीचे हाथ रखकर, एक पैर के ऊपर दूसरा पैर रखकर वृक्ष के नीचे पड़ा हुआ है। भाड़े की गाड़ी में, ठसाठस भरी हिन्दुस्तानी स्त्रियाँ कालीघाट जा रही हैं। एक चपरासी ने एक चिट्ठी हरलाल के सामने लाकर कहा—"बाबू, ठिकाना पढ़ दो"—मानो उसके साथ दूसरे पथिक का कोई भी पार्थक्य नहीं है। उसने भी ठिकाना पढ़कर उसे समझा दिया। धीरे धीरे आफिस बन्द हो जाने का समय आ गया। घर की तरफ जाने वाली गाड़ियाँ आफिसों के विभिन्न भागों से तेज गति से बाहर आने लगीं। आफिसों के बाबू लोग ट्रामों में ठसाठस सवार होकर थियेटरों के विज्ञापन पढ़ते-पढ़ते अपने घरों को लौट चले। आज से हरलाल का आफिस नहीं है। आफिस की छुट्टी नहीं है। घर लौट जाने के लिए ट्राम पकड़ने की कोई हड़बड़ी नहीं है। शहर के सभी काम-काज, मकान-घर, गाड़ी-सवारी, आना-जाना सभी

तो हरलाल के लिए अतिशय उत्कट सत्य की भाँति दाँत निपोरते जा रहे हैं, बिलकुल ही तथ्यहीन स्वप्न की तरह छाया बनाते जा रहे हैं। आहार नहीं, विश्राम नहीं, आश्रय नहीं, किस तरह हरलाल का दिन बीत गया, इसे वह जान भी न सका।

गैस की बत्तियाँ राह-राह में जलने लगीं—मानो एक सतर्क अन्धकार चारों दिशाओं में अपने सहस्र क्रूर नेत्रों को खोलकर शिकार-लुब्ध दानव की तरह शान्त हो गया है। रात कितनी बीत चुकी है, इस बात की हरलाल ने चिन्ता भी नहीं की। उसके ललाट की शिराएँ मानो तनती जा रही हैं, मस्तक फटता जा रहा है, शरीर में आग जल रही है। पैर अब चलते ही नहीं। सारा दिन पर्याय-क्रम से वेदना की उत्तेजना और अवसाद की शिथिलता के बीच, माँ की बातें केवल मानस में यातायात कर रही हैं। कलकत्ते की असंख्य जन-श्रेणी में केवल यही एक नाम सूखे कण्ठ को भेद कर उसके मुँह से उच्चारित हुआ—माँ, माँ, माँ, और किसी को वह बुला नहीं सका। उसने सोचा, जब रात्रि निविड़ हो जायगी, कोई भी व्यक्ति जब इस अति असाधारण हरलाल को बिना अपराध के अपमानित करने के लिए जागता न रहेगा, तभी वह चुपचाप अपनी माँ की गोद में जाकर सो रहेगा—उसके बाद वह नींद भले ही कभी न टूटे। उसकी पीठ पीछे, कहीं उसकी माँ का अपमान करने के लिए पुलिस या तकादगीर न पहुँच जायँ, इस भय से वह घर लौट नहीं रहा था। शरीर का बोझ जब सहन करने की शक्ति नहीं रही, तभी भाड़े की गाड़ी देखकर हरलाल ने उसे बुलाया। गाड़ीवान ने पूछा—"कहाँ जाओगे?"

हरलाल ने कहा—"कहीं भी नहीं। इसी मैदान में थोड़ी देर तक हवा खाता हुआ घूमूँगा।"

गाड़ीवान को यह व्यक्ति अजीब मालूम पड़ा—ज्योंही चले जाने को

तत्पर हुआ कि हरलाल ने उसके हाथ पर एक रुपया रख दिया। वह गाड़ी तब हरलाल को लेकर मैदान के चारो ओर चक्कर काटने लगी।

थके हुए हरलाल ने अपना उत्तप्त मस्तक खुली खिड़की के बाहर कर, आँखें बन्द कर लीं। क्रमशः उसकी समस्त वेदना मानो दूर हो गयी। शरीर शीतल हो गया। मन में एक सुगम्भीर, सुनिविड़ आनन्दपूर्ण शान्ति बढ़ने लगी। मानो एक परम परित्राण ने, चारों तरफ से आलिङ्गन-पाश में उसे बाँध लिया हो। वह सारा दिन जो यह सोचता रहा कि उसके लिए कहीं भी कोई पथ नहीं है, कोई सहारा नहीं है, निष्कृति नहीं है, उसके अपमान का अन्त में नहीं है, दुःख की अवधि नहीं है, ये सभी बातें मानो एक ही पल में मिथ्या हो गयीं। अब उसे जान पड़ा कि, यह तो केवल भय मात्र था, सत्य नहीं। उसके जीवन को जिसने लोहे की मुट्ठी में कसकर दबोच रक्खा था, उसे हरलाल ने अब जरा भी स्वीकार नहीं किया। मुक्ति अनन्त आकाश को पूर्ण किये हुए है, शान्ति असीम हो उठी है। इस अति सामान्य हरलाल को बन्दी बना कर रख सके, ऐसी शक्ति विश्व-ब्रह्माण्ड के किसी भी राजा-महाराजा में नहीं है। जिस आतंक में उसने अपने को आप ही बाँध रक्खा था, वह पूर्ण रूप से ही खुल गया है। तब हरलाल ने अपने बन्धन-मुक्त हृदय के चारो ओर, अनन्त आकाश के भीतर अनुभव किया कि उसकी वही दरिद्र माँ देखते-देखते विराट रूप में सम्पूर्ण अन्धकार को समावेत कर बैठी है। उनको कहीं भी स्थान नहीं अँट रहा है। कलकत्ते के राह-घाट, मकान-घर, दूकान-बाजार थोड़े-थोड़े परिमाण में उनके अन्दर आच्छन्न होकर लुप्त होते जा रहे हैं—हवा भर गयी, आकाश भर उठा, एक-एक करके नक्षत्र उनके भीतर विलीन हो गये। हरलाल के शरीर-मन की समस्त वेदना, समस्त भावना, समस्त चेतना उनके भीतर थोड़ी-थोड़ी मात्रा में समाप्त हो गयीं—

वह चला गया, उत्तप्त वाष्प के बुद्बुद एक दम फट गये। अब तो अन्धकार भी नहीं है, प्रकाश भी नहीं है, केवल एक प्रगाढ़ परिपूर्णता ही रह गयी है।

गिर्जा घर की घड़ी में एक बज गया। गाड़ीवान ने अन्धकार-पूर्ण मैदान में चक्कर लगाते-लगाते अन्त में चिढ़कर कहा—"बाबू, घोड़ा तो अब चल नहीं सकता—कहाँ जाना होगा बताओ।"

कोई भी उत्तर उसे नहीं मिला। कोचबक्स से उतर कर हरलाल को हिलाकर उसने फिर पूछा। कोई उत्तर नहीं मिला, तब भयग्रस्त होकर गाड़ीवान ने जाँच करके देखा, हरलाल का शरीर जड़वत् है, उसकी साँस चल नहीं रही है।

"कहाँ जाना होगा," इस प्रश्न का कोई उत्तर नहीं मिला।



पहला नम्बर

मैं तमाखू तक भी नहीं पीता। मुझे एक गगनभेदी नशा है, उसी के प्रभाव से अन्य सभी नशे, एकदम जड़ तक सूखकर मर चुके हैं। मेरा वह नशा पुस्तकें पढ़ने का है। मेरे जीवन का मन्त्र यह था—

"यावज्जीवेत् नहीं भी जीवेत्
ऋणी कृत्वा पुस्तकं पठेत्।"

जिन लोगों को भ्रमण का शौक रहता है किन्तु राह खर्च के लिए दाम का अभाव रहता है, वे जिस तरह टाइम-टेबल पढ़ते रहते हैं, ठीक उसी प्रकार अपनी कच्ची उम्र में मैं जब आर्थिक कठिनाई के दिनों में था, तब पुस्तकों का सूचीपत्र पढ़ता रहता था। मेरे बड़े भाई साहब के चचेरे ससुर, किसी भी नयी पुस्तक के प्रकाशित होते ही, न आव देखते न ताव, बस झट खरीद लेते थे। और उनमें यह प्रधान अहङ्कार था कि उन पुस्तकों में से एक भी पुस्तक आज तक खोने नहीं पायी है। सम्भवतः हमारे देश में ऐसा सौभाग्य और किसी को प्राप्त नहीं होता। क्योंकि, धन, आयु, अथवा संसार में जितने भी सरणशील पदार्थ विद्यमान हैं, उन सभी से श्रेष्ठतम स्थान देशी भाषा की पुस्तकों को ही प्राप्त है। यह बात इसीसे समझ में आ जायगी कि भाई साहब के चचेरे ससुर की पुस्तकों की आलमारी की चाभी, भाई साहब की चचिया सास के लिए भी दुर्लभ थी। जब मैं बचपन में भाई साहब के साथ उनकी ससुराल जाया करता था,

तब उन बन्द आलमारियों की तरफ ताकते-ताकते समय बिता देता था। तब मेरी आँखों की जीभ में जल भर जाता था। यही कहना यथेष्ट होगा कि बचपन से ही मैंने इतने असम्भव रूप से अधिक पढ़ाई की थी कि परीक्षा पास न कर सका। जितना पढ़ना पास करने के लिए अत्यन्त आवश्यक है, उतना मेरे पास समय ही नहीं था।

मैं परीक्षा में अनुत्तीर्ण छात्र हूँ, इस कारण मेरे लिए एक बहुत बड़ी सुविधा यह है कि विश्वविद्यालय के घड़े में विद्या के भरे हुए जल से मेरा स्नान नहीं होता—स्रोत के जल में स्नान करना ही मेरा अभ्यास है। आजकल मेरे पास अनेक बी० ए०, एम० ए० आया करते हैं। वे जितने भी आधुनिक क्यों न हों, वे आज भी विक्टोरिया-युग में नजरबन्द होकर बैठे हुए हैं। उनकी विद्या का जगत्, 'टेलमी' की पृथ्वी की भाँति अठारहवीं-उन्नीसवीं शताब्दी के साथ एकदम स्क्रू से कस डाला गया है। हमारे देश के छात्रों का दल, पुत्र-पौत्रादि क्रम से चिरकाल तक मानो उसकी ही प्रदक्षिणा करता रहेगा। उनकी मानस-रथयात्रा की गाड़ी बड़े कष्ट से 'मिल बेथम' को पार कर कार्लाइल और रस्किन तक पहुँचने के पश्चात् एकदम करवट हो पड़ी है। मास्टर साहब की बोली के घेरे के बाहर, वे साहस के साथ हवाखोरी के लिए बाहर नहीं निकल सकते।

किन्तु हमने जिस देश के साहित्य को खूँटे की तरह गाड़कर उसमें मन को बाँध रक्खा है, और सानी-पानी खिला रहे हैं, उस देश में साहित्य तो स्थूणा नहीं है—वह वहाँ के प्राणों के साथ-साथ चल रहा है। वह प्राण भले ही मुझमें न हो, किन्तु उस चाल का अनुसरण करने की चेष्टा मैंने की है। मैंने अपनी चेष्टा से फ्रांसीसी, जर्मन, इटालियन भाषाएँ सीख लीं थीं। थोड़े ही दिन पूर्व मैंने रूसी भाषा सीखना भी शुरू कर दिया था। आधुनिकता की जो एक्सप्रेस गाड़ी, प्रति घण्टे साठ मील से भी तेज गति से दौड़ती चली जा

रही है, उसका ही टिकट मैंने खरीदा है। इसीलिए मैं हाक्सले—डारविन तक पहुँच कर भी रुक नहीं गया, टेनीसन की भी समालोचना करने में मैं नहीं डरा, यहाँ तक कि इबसेन, मेटरलिङ्क के नाम की नौका पकड़कर अपने मासिक-साहित्य में सस्ती ख्याति का कारोबार चलाने में मुझे सङ्कोच का अनुभव होता है।

मुझे भी किसी दिन कुछ लोग पता लगाकर पहचान लेंगे, यह बात मेरे लिए आशातीत थी। मैंने देखा है, हमारे देश में दो-चार ऐसे लड़के भी मिलते हैं, जो कालेज नहीं छोड़ते, पर कालेज के बाहर सरस्वती की जो बीणा बजती है, उसकी पुकार से वे उतावले हो उठते हैं। वे ही लोग धीरे-धीरे दो-चार की संख्या में मेरे कमरे में आने लगे।

यही दूसरा नशा मुझपर सवार हो गया—बकवास करना। भद्र-भाषा में उसको आलोचना कह सकते हैं। देश के चारो तरफ सामयिक और असामयिक साहित्य में जो सब वार्तालाप सुनता रहता हूँ, वे एक तरफ इतने कच्चे हैं, दूसरी तरफ इतने पुराने हैं, कि कभी-कभी श्वास-प्रश्वास रुँध देनेवाली उसकी उमस को, उदार विचारों की खुली हवा में छोड़ देने की इच्छा होती है, फिर भी लिखने में आलस्य घेर लेता है। इस कारण मन लगाकर बातें सुननें वाले लोगों के मिल जाने से, इस आफत से बच जाता हूँ।

मेरा दल बढ़ता ही गया। मैं अपनी गली के दूसरे नम्बर के मकान में रहता था। चूँकि मेरा नाम अद्वैतचरण है, इसलिए हमारे दल का नाम द्वैताद्वैत सम्प्रदाय पड़ गया था। हमारे इस सम्प्रदाय में जितने भी सदस्य थे, उनमें से किसी को भी समय-असमय का विचार नहीं था। कोई तो पञ्च किये हुए ट्राम-टिकट से चिह्नित एक नवप्रकाशित अँग्रेजी पुस्तक हाथ में लेकर सबेरे ही आ पहुँचता था—तर्क करते-करते एक बज जाता था, फिर भी तर्क का अवसान नहीं

होता था। कोई तो कालेज की पढ़ाई की सद्यःनोट की हुई कापी हाथ में लेकर तीसरे पहर को आ धमकता था, रात के जब दो बज जाते थे, तब भी उठने का नाम नहीं लेता था। इन लोगों को मैं प्रायः ही भोजन करने के लिए कहता था। क्योंकि, मैंने देख लिया है कि जो लोग साहित्य-चर्चा करते हैं उनकी रसज्ञता की शक्ति केवल मस्तिष्क में ही नहीं रहती, उनकी रसनायें भी खूब प्रबल रहती हैं। किन्तु, जिनके भरोसे मैं इन क्षुधित लोगों को कभी-कभी भोजन करने के लिए कहता हूँ, उनकी अवस्था इस निमन्त्रण के कारण कैसी हो जाती है उसको मैं बराबर तुच्छ ही समझता आया हूँ। संसार में भावों के और ज्ञान के जितने सब बड़े-बड़े कुम्भकार के चाक घूम रहे हैं, जिनमें मानव-सभ्यता कुछ तो तैयार होकर अग्नि की आँच खाकर कड़ी हो जा रही है और कुछ कच्ची रहने की हालत में टूट-फूटकर गिरती जा रही है, उसके सामने घर-गृहस्थी के काम-धन्धे और रसोईघर के चूल्हे की आग, क्या दृष्टि आकर्षित कर सकती है!

भवानी की भ्रकुटी-भङ्गी का मर्म, भव ही जानते हैं, ऐसी ही बात मैं काव्य में पढ़ चुका हूँ। किन्तु भव के नेत्र तीन हैं, मेरे केवल दो हैं, इनकी भी दृष्टि-शक्ति पुस्तकें पढ़ते-पढ़ते क्षीण हो चुकी है। इसलिये असमय में भोजन के आयोजन के लिए कह देने से, मेरी पत्नी के भ्रू-चाप में कैसी चपलता उपस्थित होती है, यह देखने का अवकाश मुझे न था। धीरे-धीरे उनकी समझ में यह बात आ गयी थी कि मेरे घर में असमय ही समय है और अनियम ही नियम है। मेरे संसार की घड़ी के समय का कोई ठिकाना नहीं है, और मेरी गृहस्थी की प्रत्येक कोठरी में उनचास पवनों का निवास है। मेरे पास जो भी अर्थ-सामर्थ्य है, उसका केवल एक ही खुला ड्रेन था, वह था पुस्तक खरीदने की तरफ। संसार की अन्य आव-

श्यकताएँ, जूठन के लिए धरना देने वाले कुत्ते की तरह, जूठन चाट कर और सूँघ कर किस तरह जीवित थीं, इसका रहस्य मुझसे अधिक मेरी स्त्री ही अधिक जानती थीं।

विविध ज्ञानविषयक बातें सुनना-सुनाना मेरी तरह के मनुष्य के लिए नितान्त आवश्यक है। यह अपनी विद्या प्रकट करने के लिए नहीं, परोपकार करने के अभिप्राय से भी नहीं, प्रत्युत बातें करते-करते मनन करने और ज्ञान को हजम करने की प्रबल आकांक्षा से। यदि मैं लेखक होता, अथवा अध्यापक होता, तो उस हालत में बकवाद मेरे लिए फालतू हो जाता। जिनके पास सुनिर्दिष्ट परिश्रम है, उनको खायी हुई खाद्य-वस्तु को हजम करने के उपाय ढूँढ़ने की जरूरत नहीं पड़ती। जो लोग घर में बैठे-बैठे खाया करते हैं, उनके लिए अन्ततः छत के ऊपर तीव्र वेग से टहलना जरूरी है। मेरी दशा यही है। इसीलिए जबतक मेरा द्वैत सम्प्रदाय जम नहीं गया, तबतक मेरे लिए मेरा एक मात्र द्वैत मेरी पत्नी ही थीं। वे मेरे इस मानसिक परिचय की सशब्द प्रक्रिया को बहुत दिनों तक चुपचाप वहन करती रहीं। यद्यपि वे मिल की ही बनी साड़ी पहनती थीं, यद्यपि उनके गहनों का सोना असली और ठोस नहीं था, तो भी अपने पति से वे जो आलाप सुनती थीं, उनके भीतर सस्ती अथवा मिलावटी कोई भी चीज नहीं थी। मेरा मूल्यांकन बढ़ जाने के बाद से, वे इस आलाप से वञ्चित हो गयी थीं, किन्तु इसके लिए मैंने उनकी तरफ से किसी तरह की शिकायत नहीं सुनी।

मेरी स्त्री का नाम अनिला है। इस शब्द का अर्थ क्या है यह मैं नहीं जानता। मेरे ससुर भी जानते थे, ऐसी बात नहीं है। यह शब्द सुनने में मीठा है और हठात् मालूम होता है कि, इसका कुछ न कुछ अर्थ है ही। शब्दकोश में चाहे जो कुछ भी लिखा

हो, इस नाम का असल अर्थ है—मेरी स्त्री अपने पिता की दुलारी लड़की हैं। जब मेरी सास ढाई साल का एक बच्चा छोड़कर मर गयीं, तब उस छोटे से बच्चे की देख-भाल करने के मनोरम उपाय-स्वरूप मेरे ससुर ने दूसरा विवाह कर लिया। उनका यह उद्देश्य किस हद तक सफल हुआ था, वह केवल इतना बता देने से ही समझ में आ जायगा कि, उनकी मृत्यु के दो दिन पहले, उन्होंने अनिला का हाथ पकड़ कर कहा था—"बेटी, मैं तो अब जा रही हूँ, अब सरोज के विषय में सोचने के लिए तुम्हारे अतिरिक्त और कोई भी नहीं रहा।"

उनकी पहली स्त्री, दूसरे विवाह के बच्चों के लिए कैसी व्यवस्था कर गयीं यह तो मैं ठीक नहीं जानता; किन्तु अनिला के हाथ में वे गुप्त रूप से अपने जमा किये हुए प्रायः साढ़े सात हजार रुपये दे गयीं। और कह गयीं कि यह रुपया ब्याज पर लगाने की जरूरत नहीं है—इस रकम से तुम सरोज की पढ़ाई की व्यवस्था कर देना।

इस घटना से मैं कुछ आश्चर्य में पड़ गया था। मेरे ससुर केवल बुद्धिमान ही नहीं थे, वे विज्ञ भी थे। अर्थात् आवेश में आकर कोई भी काम नहीं करते थे, हिसाब के साथ चलते थे। इसीलिए उनके लड़के को पढ़ा-लिखा कर सुयोग्य बना देने का भार यदि किसी के ऊपर सौंप देना उचित था तो उसके लिए उपयुक्त पात्र मैं ही था, इस विषय में मुझे कोई सन्देह नहीं था। किन्तु उनकी लड़की ही उनके दामाद की अपेक्षा अधिक योग्यता रखती है, इस तरह की धारणा उनको कैसे हो गयी, यह तो मैं बता नहीं सकता। फिर भी रुपये-पैसे के सम्बन्ध में यदि वे मुझे खूब ईमानदार न समझते तो उस हालत में मेरी स्त्री के हाथ में इतना नकद रुपया दे ही नहीं सकते थे। वास्तव में वे थे विक्टोरिया युग के, अन्त तक वे मुझे पहचान न सके थे।

मन ही मन क्रोध करके पहले तो मैंने यही सोच लिया था कि, इस सम्बन्ध में कोई भी बात न कहूँगा। मैंने कोई बात कही भी नहीं। विश्वास यही था कि, अनिला इस सम्बन्ध में मुझसे बात करेगी, मेरी शरण में आये बिना उसके लिए कोई उपाय ही नहीं है। किन्तु, जब अनिला मेरे पास परामर्श लेने नहीं आयी, तब मैंने सोच लिया कि, शायद उसको साहस ही नहीं हो रहा है। अन्त में एक दिन मैंने बात ही बात में उससे पूछा—"सरोज की पढ़ाई के बारे में तुम क्या कर रही हो ?"

अनिला ने कहा—"मैंने मास्टर रख दिया है, और वह स्कूल भी जा रहा है।"

मैंने राय दी कि सरोज को पढ़ाने का भार मैं स्वयं लेने को तैयार हूँ। आजकल शिक्षा-विभाग की जो नवीन पद्धतियाँ निकली हैं, उनमें से कुछ-कुछ उसे समझा देने की चेष्टा करूँगा। अनिला ने, न हाँ कहा, न ना। इतने दिनों के बाद मेरे मन में पहली बार सन्देह जाग उठा कि अनिला मेरे प्रति श्रद्धा का भाव नहीं रखती। मैंने कालेज की कोई परीक्षा पास नहीं की है, इसलिए सम्भवतः वह यही समझती है कि, लिखने-पढ़ने के सम्बन्ध में परामर्श देने की क्षमता और अधिकार मुझे नहीं है। अब तक सौजात्य अभिव्यक्तिवाद और बेढंगी चंचलता के सम्बन्ध में उससे मैंने जो कुछ बताया था, उसका कुछ भी मूल्य अनिला ने नहीं समझा है। सम्भवतः उसने यही सोच लिया था कि, सेकण्ड क्लास का लड़का भी मुझसे अधिक जानता है। वह समझती थी कि मास्टर साहब में सभी विद्याएँ, सिमट कर उनके मन के भीतर बैठी हुई हैं। क्रोधावेश में मैंने मन ही मन कहा—स्त्रियों के सामने अपनी योग्यता प्रमाणित करने की आशा उसे छोड़ देनी चाहिये।

संसार में अधिकांश बड़े-बड़े जीवन-नाट्य, यवनिका की आड़ में

ही उठते-गिरते रहते हैं, पञ्चमाङ्क के अन्त में वह यवनिका गिरी रह जाती है। मैं जब अपने द्वैत लोगों को लेकर बेर्गसं के तत्त्वज्ञान और इब्लेन के मनस्तत्व की आलोचना कर रहा था, तब मैंने यही सोचा था कि, अनिला की जीवन-यज्ञ-वेदी पर शायद कोई भी आग नहीं जली है। किन्तु, आज जब उस अतीत की तरफ पिछहुड़ होकर मैं देखने लगता हूँ, तब स्पष्ट रूप से समझ जाता हूँ कि, जो सृष्टिकर्त्ता आग में जलाकर, हथौड़े से पीटकर जीवन प्रतिमा गढ़ते रहते हैं, वे अनिला के मर्मस्थल में खूब ही जागरूक थे। वहाँ एक छोटे भाई, एक बहन, और एक विमाता का समावेश हो जाने से सतत ही एक घात-प्रतिघात की लीला चल रही है। पुराणों में वर्णित वासुकी जिस पौराणिक पृथ्वी को पकड़े हुए हैं, वह पृथ्वी स्थिर है। किन्तु संसार में जिस महिला को वेदना की पृथ्वी वहन करनी पड़ती है, उसकी वह पृथ्वी प्रतिक्षण नये-नये आघातों से बनती रहती है। उस चलनशील व्यथा का भार छाती पर लेकर जिसको घर-गृहस्थी के छोटे-मोटे कामों के बीच प्रतिदिन चलना पड़ता है, उसके हृदय की बात अन्तर्यामी के अतिरिक्त और कौन पूर्णरूप से समझेगा। अन्ततः मैं तो कुछ भी नहीं समझता। कितना उद्वेग, कितना अपमानित प्रयास, पीड़ित स्नेह की कितनी अन्तर्गूढ़ व्याकुलता, मेरे इतने समीप निःशब्दता के अन्तराल में मथित होती जा रही थी, इसे तो मैं जान ही न सका था। मैं जानता था कि, जिस दिन द्वैत दल के भोज का दिन उपस्थित होता था, उस दिन का उद्योग-पर्व ही अनिला के जीवन का प्रधान पर्व है। आज मैं अच्छी तरह समझ रहा हूँ कि, परम व्यथा के भीतर से ही इस गृहस्थगृह में यही छोटा भाई अपनी बहन के लिये सर्वापेक्षा अन्तरतम हो उठा है। सरोज को पाल-पोसकर योग्य बना देने के सम्बन्ध में मेरे परामर्श और मेरी सहायता को इन लोगों ने सम्पूर्ण अनावश्यक समझ लिया

है, इसीलिए मैंने उस तरफ बिलकुल ही दृष्टिपात नहीं किया। उसका काम किस रीति से चल रहा है, इस सम्बन्ध में किसी दिन मैंने पूछा तक भी नहीं। इसके ही बीच हमारी गली के प्रथम नम्बर के मकान में किरायेदार आ गया। यह मकान पुराने समय के विख्यात धनवान महाजन उद्धव बड़ाल के समय का बना था। उस वंश का धनजन अब प्रायः समाप्त हो चुका है, दो-एक विधवाएँ बची हुई हैं। वे यहाँ नहीं रहतीं, इस कारण यह मकान खाली ही पड़ा हुआ था। कभी-कभी विवाह-प्रभृति कार्य-क्रम के समय कोई-कोई इस मकान को थोड़े दिनों के लिए भाड़े पर ले लेता था, बाकी समय में इतने बड़े मकान के लिए किरायेदार प्रायः नहीं ही मिलता था। मान लो, इस बार जो आ गये, उनका नाम है राजा सितांशुमौलि, और मान लिया जाय कि, वे नरोत्तमपुर के जमीन्दार हैं।

मेरे मकान के ठीक बगल में ही अकस्मात् एक इतना बड़ा आविर्भाव हुआ है, इसे शायद मैं जान भी न सकता। कर्ण जिस तरह एक सहज कवच धारण करके इस पृथ्वी पर अवतीर्ण हुए थे, एक विधिप्रदत्त सहज कवच मेरे पास था। वह कवच है मेरी स्वाभाविक अन्यमनस्कता। इसलिए साधारणतः इस संसार में चारो तरफ जो ठेलम-ठेल, गड़बड़ी, गाली-गलौज का बाजार गर्म रहता है, उनसे आत्मरक्षा करने का उपकरण मेरे पास है।

किन्तु आधुनिक काल के बड़े आदमी स्वाभाविक उत्पात से अधिक हैं, मतलब अस्वाभाविक उत्पात हैं। जिनके दो हाथ हैं, दो पैर हैं और एक सिर है, वे हैं मनुष्य; जिनके हठात् हाथ-पैर सिर बढ़ गये हैं वे हैं दैत्य। दिन-रात घोर शब्दों से वे अपनी सीमा को तोड़ते रहते हैं और अपनी अत्यधिकता के द्वारा स्वर्गलोक और मानवलोक को परेशानी में डाल देते हैं। उनके प्रति ध्यान न देना असम्भव है। जिनके ऊपर मन लगाने की कोई आवश्यकता नहीं है,

साथ ही मन लगाये बिना रहने का भी उपाय नहीं है, वे ही लोग हैं जगत् के अस्वास्थ्य, स्वयं इन्द्र तक उनसे डरते रहते हैं।

मैं अपने मन में समझ गया कि, सितांशुमौलि उसी दल के मनुष्य हैं। अकेले ही एक मनुष्य इतनी अनुचित रीति से अतिरिक्त हो सकता है, यह तो मैं पहले नहीं जानता था। गाड़ी-घोड़ा, लाव-लश्कर लेकर उसने दस मस्तक बीस हाथ का स्वरूप प्रकट कर दिया है। इस कारण उसके ऊधम से मेरे सारस्वत-स्वर्गलोक का घेरा टूटने लगा।

उसके साथ मेरा प्रथम परिचय हमारी गली के मोड़ पर ही हुआ। इस गली की प्रधान विशेषता यह थी कि, मेरी तरह अन्यमनस्क व्यक्ति सामने की तरफ देखे बिना, दायें-बायें दृष्टि फेंके बिना, इसमें निरापद रूप से विचरण कर सकता है। यहाँ तक कि, पथ में चलते रहने की अवस्था में मेरेडिथ की कहानी, ब्राउनिङ्ग का काव्य अथवा हमारे देश के किसी आधुनिक कवि की रचना के सम्बन्ध में मन ही मन तर्क-वितर्क करके भी, अपघात मृत्यु से बचकर चलना सम्भव है। किन्तु, उस दिन निरर्थक ही एक प्रचण्ड कोलाहल की गर्जना सुनकर पीछे की तरफ ताककर मैंने देखा, एक खुली बुहाम गाड़ी के दोनों लाल रङ्ग के घोड़े मेरे ऊपर गुजर जाने वाले हैं! जिसकी वह गाड़ी है, वे स्वयं ही चला रहे हैं, उनकी बगल में उनका कोचवान बैठा हुआ है। बाबू साहब जोर से अपने दोनों हाथों से रास खींचे हुए हैं। मैंने किसी तरह उस संकीर्ण गली के पास की एक तमाखू की दूकान में घुटनों के सहारे टेक कर आत्मरक्षा की। मैंने देखा, बाबू साहब मेरे ऊपर क्रुद्ध हैं! क्योंकि, जो असतर्कता के साथ रथ चलाते हैं, वे असतर्क पदातिक को किसी तरह भी क्षमा नहीं कर सकते। इसके कारण का उल्लेख मैं पहले

ही कर चुका हूँ। पदातिक के केवल दो ही पैर होते हैं, और वह स्वाभाविक मनुष्य होता है। जो व्यक्ति बग्घी चलाकर दौड़ लगाता है, उसके आठ पैर होते हैं; वह है दैत्य। अपनी इस अस्वाभाविक अधिकता के द्वारा वह जगत् में उपद्रव मचाता रहता है। दो पैर वाले मनुष्य के विधाता इस आठ पैर वाले आकस्मिक के लिए तैयार नहीं थे।

स्वभाव के स्वास्थ्यकर नियमों को ध्यान में रखते हुए, इस अश्वरथ और सारथि सभी को मैं भूल जाता, क्योंकि इस परमाश्चर्यमय जगत् में ये लोग विशेष रूप से याद रखने की वस्तु नहीं हैं। किन्तु प्रत्येक मनुष्य को जिस परिमाण में गड़बड़ी मचाने का स्वाभाविक अधिकार है, उससे कहीं बहुत अधिक दखल करके ये बैठे हुए हैं। इस कारण यद्यपि इच्छा करते ही मैं अपने तीन-नम्बर के पड़ोसी को दिन पर दिन, महीने के बाद महीने तक भूलकर रह सकता हूँ, किन्तु अपने इस प्रथम नम्बर के पड़ोसी को एक क्षण के लिए भी भूल जाना कठिन है। रात के समय उसके आठ-दस घोड़े अस्तबल में काठ की बनी फर्श के ऊपर बिना संगीत का जो ताल देते रहते हैं, उससे मेरी नींद एकदम हराम हो जाती है। इसके अतिरिक्त भोर में ही उन आठ-दस घोड़ों को, आठ-दस साईस जब शब्दों के साथ उन्हें मलने लगते हैं, तब तो सौजन्य की रक्षा करना मेरे लिए असम्भव हो जाता है। इसके अतिरिक्त उनका उड़िया बैरा, भोज-पुरी बैरा, उनका पाण्डे-तिवारी उपाधिधारी दरवान दल, इसमें से कोई भी स्वर-संयम अथवा मितभाषिता का पक्षपाती नहीं है। इसी-लिए मैंने कहा था कि, व्यक्ति तो केवल एक ही है। किन्तु उसके पास गड़बड़ी मचाने के यन्त्र हैं। यही है दैत्य का लक्षण। यह उसके अपने लिए अशान्तिकर नहीं भी हो सकता। अपने बीस नासिका-रन्ध्रों से आवाज करते समय सम्भवतः रावण को नींद में

बाधा नहीं पड़ती थी, किन्तु उसके पड़ोसी की असुविधा का विचार तो कीजिये।

स्वर्ग का प्रधान लक्षण है परिमाण सुषमा, लेकिन जिस दानव के द्वारा स्वर्ग की नन्दन शोभा विनष्ट होती है, उसका प्रधान लक्षण है अपरिमिति। आज उसी अपरिमिति दानव ने रुपयों की थैली को वाहन बनाकर मानवों के लोकालयों पर आक्रमण कर दिया है। बगल काट कर यदि मैं बचकर जाना चाहता हूँ तो वह चारो घोड़ों को दौड़ाकर मेरी गरदन पर आ घहराता है—इसके अतिरिक्त आँखें भी तरेरता है।

उस दिन तीसरे पहर को तबतक मेरे द्वैत लोगों का आगमन नहीं हुआ था। मैं बैठे-बैठे ज्वार-भाटे के तत्त्व के सम्बन्ध में एक पुस्तक पढ़ रहा था, ऐसे ही समय में मेरे मकान की दीवार को लाँघ कर, द्वार को पार कर, मेरे पड़ोसी का एक गेंद झनझन शब्दों के साथ मेरी खिड़की के शीशे के ऊपर आ गिरा। चन्द्रमा का आकर्षण, पृथ्वी की नाड़ी की चञ्चलता, विश्वगीति काव्य का चिरन्तन छन्द-तत्व प्रभृति सभी को अतिक्रम करके मुझे याद पड़ गया कि मेरे एक पड़ोसी हैं, और वे अत्यन्त अधिक परिमाण में हैं, वे मेरे लिए सम्पूर्ण अनावश्यक हैं, फिर भी अतिशय अवश्यम्भावी हैं। दूसरे ही क्षण मैंने देखा कि मेरा बूढ़ा बैरा अयोध्या दौड़ते-दौड़ते, हाँफते-हाँफते आ धमका है। यही है मेरा एकमात्र अनुचर। इसको डाँटने-फटकारने से मैं उसे विचलित नहीं कर सकता। दुर्लभता का कारण पूछने पर कहता है, अकेला आदमी हूँ, किन्तु मेरे जिम्मे काम बहुत है। आज मैंने अनुभव किया कि माँग न होने पर भी, गोले को उठाकर वह बगल के मकान की तरफ दौड़ता हुआ चला जा रहा है। मुझे खबर मिली कि प्रतिबार गोला पहुँचा देने के लिए वह चार पैसे के हिसाब से मजदूरी पाता है।

मैंने यह भी देखा कि मेरी खिड़की के शीशे ही केवल फूट नहीं रहे हैं, केवल शान्ति ही नहीं टूट रही है, बल्कि मेरे अनुचर और मित्रों का मन भी टूटने लगा है। मेरी तुच्छता के सम्बन्ध में अयोध्या बैरा की अवज्ञा प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। यह उतनी आश्चर्य की बात नहीं थी, किन्तु मेरे द्वैत सम्प्रदाय के प्रधान सरदार कन्हाई लाल का मन भी मुझे बगल के ही मकान के प्रति उत्सुक होता हुआ दिखाई पड़ा। मेरे प्रति उसके मन में जो निष्ठा थी, वह उपकरण-मूलक नहीं अन्तःकरण मूलक है, यही जानकर मैं निश्चिन्त रहता था।

मैं प्रथम नम्बर की बाबूगिरी को तीखे तानों से कोसते रहने की चेष्टा करता रहता था। कहता था, सजावट-बनावट से मन की शून्यता को ढँक देने की चेष्टा ठीक मानो रङ्गीन बादलों के द्वारा आकाश को ढक रखने की ही तरह दुराशाजनक है। जरा भी हवा लगने से बादल हट जाते हैं, आकाश का खुला अंश निकल आता है।

कन्हाई लाल ने एक दिन प्रतिवाद करके कहा—यह मनुष्य एकदम खोखला नहीं है, यह बी० ए० पास कर चुका है। कन्हाई लाल स्वयं बी० ए० पास था, इस कारण उस डिग्री के सम्बन्ध में मैं कुछ भी न कह सका।

प्रथम नम्बर के सभी गुण सशब्द हैं। वे तीन यन्त्रों को बजा सकते हैं—क्लार्नेट, एसराज और बेलो। कभी-कभी इनका परिचय मिलता रहता था। सङ्गीत के सुर के सम्बन्ध में मैं अपने को सुराचार्य मानकर अभिमान नहीं करता। किन्तु मेरे मतानुसार गान कोई उच्च-श्रेणी की विद्या नहीं है। भाषा के अभाव से जिस समय मनुष्य गूँगा था, तभी गान की उत्पत्ति हुई। तब मनुष्य सोचने में समर्थ नहीं था इस कारण चिल्लाता रहता था। आज भी जितने मनुष्य आदिम अवस्था में हैं, वे केवल शब्द ही करते हैं। किन्तु मैंने यह देख लिया कि मेरे द्वैतदल के अन्तर्गत अन्ततः चार ऐसे लड़के हैं,

जो प्रथम नम्बर के बेलों के बज उठने के साथ ही, न्याय शास्त्र के नवीनतम अध्याय के प्रति मन नहीं लगा सकते।

मेरे दल के अनेक लड़के जब प्रथम नम्बर की तरफ झुक पड़े थे, तब एक दिन अनिला ने मुझसे कहा—"बगल के मकान में उपद्रव होने लगा है, अब हम लोग यहाँ से किसी दूसरे मकान में चले जाते तो ठीक होता।"

मैं बहुत ही प्रसन्न हो गया। मैंने अपने दल के लोगों से कहा—"देख लिया न, स्त्रियों में कैसा एक सहज-बोध विद्यमान है? जो सब चीजें प्रमाण के द्वारा समझ में आती हैं, उनको वे भले ही न समझें, किन्तु जिन चीजों का कोई प्रमाण नहीं है, उन्हें समझने में उनको जरा भी देर नहीं लगती।"

कन्हाई लाल ने हँसकर कहा—"जैसे उल्लू, ब्रह्मदैत्य, ब्राह्मण के चरणों की धूल का माहात्म्य, पतिदेव की पूजा का पुण्यफल इत्यादि इत्यादि।"

मैंने कहा—"नहीं जी, यही देखो न, हमलोग प्रथम नम्बर के इस ठाट-बाट को देखकर स्तम्भित हो गये हैं, किन्तु अनिला उसकी सजावट-बनावट से तनिक भी मुग्ध नहीं हुई है।"

अनिला ने दो-तीन बार मकान बदलने के लिए कहा। मेरी भी यही इच्छा थी, किन्तु कलकत्ते की गलियों में मकान ढूँढ़ते फिरने की तरह अध्यवसाय मुझमें नहीं है। अन्त में एक दिन तीसरे पहर को यह दिखाई पड़ा कि कन्हाई लाल और सतीश प्रथम नम्बर में टेनिस खेल रहे हैं। उसके बाद जनश्रुति सुनाई पड़ी कि यति और हरेन प्रथम नम्बर की सङ्गीत-सभा में भाग लेते हैं। एक तो बाक्स-हारमोनियम बजाता है, दूसरा बायाँ-दायाँ तबला, और अरुण शायद वहाँ कामिक गान करके खूब प्रतिष्ठा प्राप्त कर चुका है। पिछले पाँच-छः वर्षों से मैं इन लोगों को जानता हूँ। किन्तु इनमें जो ये सब गुण

हैं, इसपर मैंने कभी सन्देह तक भी नहीं किया था। विशेषतः मैं यही जानता था कि अरुण के प्रधान शौक का विषय है तुलनात्मक धर्मतत्त्व। वह कामिक गान में उस्ताद है यह मैं कैसे समझ सकता।

सच बात तो यह है कि, मुँह से इस प्रथम नम्बर की जितनी ही अवज्ञा क्यों न करूँ, मन ही मन ईर्ष्या करता रहता था। मैं सोच सकता हूँ, विचार कर सकता हूँ, सभी चीजों का सार ग्रहण कर सकता हूँ, बड़ी-बड़ी समस्याओं का समाधान कर सकता हूँ—लेकिन मानसिक-सम्पदा में सितांशु मौलि को अपनी समकक्षता में, एक श्रेणी के अन्तर्गत कल्पना करना मेरे लिए असम्भव है। फिर भी, उस मनुष्य के प्रति मैं ईर्षा का भाव रखता था। क्यों ऐसा करता था, यदि खोल कर मैं यह बात कह दूँ तो लोग हँसने लगेंगे।

सबेरे ही सितांशु एक उग्र स्वभाव के घोड़े पर चढ़कर घूमने चला जाता था—क्या ही आश्चर्यजनक निपुणता के साथ रास सम्हाल कर वह इस जानवर को सम्भाल रखता था! मैं प्रति दिन ही यह दृश्य देखता था और सोचता था—'अहा! यदि मैं इसी तरह अनायास ही घोड़े की सवारी कर सकता।' पटुता नामक जो गुण मुझमें बिलकुल ही नहीं है, उसके प्रति मेरे मन में एक भारी लोभ था। मैं गानों का सुर अच्छी तरह नहीं समझता, किन्तु खिड़की से झाँककर कितने ही दिन मैं यह देख चुका हूँ कि सितांशु एसराज बजा रहा है—उस यन्त्र के ऊपर उसका एक तरह का बाधाहीन सौन्दर्यमय प्रभाव विद्यमान है, यह मेरे लिए ऐसा आश्चर्यजनक मनोहर जान पड़ता था जैसे वह यन्त्र प्रेयसी-नारी की तरह उसको प्यार करता है—उसने अपना समस्त सुर अपनी इच्छा से ही उसके हाथ बेच दिया है। चीज-वस्तु, घर-द्वार, पशु-मनुष्य सभी के ऊपर ही सितांशु का यह सहज प्रभाव एक जबर्दस्त श्री का विस्तार करता था, यह बात

अनिर्वचनीय थी। मैं इसे नितान्त दुर्लभ समझे बिना रह नहीं सकता था। मैं यही समझता था कि, संसार में किसी चीज के लिये प्रार्थना करना अनावश्यक है, सब आप ही आप उसके पास पहुँच जायगा। ऐसी इच्छा करके यह जहाँ कहीं भी जा बैठेगा, वहाँ ही इसके लिए आसन बिछा मिलेगा।

इस कारण जब मेरे द्वैत लोगों में से बहुतेरे ही एक-एक करके प्रथम नवम्बर में टेनिस खेलने, कन्सर्ट बजाने में मन लगाने लगे, तब स्थान-परित्याग द्वारा इन लोलुपों का उद्धार करने के अतिरिक्त कोई और उपाय मुझे ढूँढ़ने पर नहीं मिला। दलाल ने आकर खबर दी कि, बराह नगर काशीपुर के आसपास, मनलायक मकान रहने के लिए मिल जायगा। मैं इसपर राजी हो गया।

उस दिन प्रातःकाल के साढ़े नौ बज चुके थे, स्त्री को तैयार होने के लिए कहने गया। वे भण्डार घर में नहीं मिलीं, रसोई घर में भी नहीं दिखाई पड़ीं। फिर मैंने देखा कि सोने के कमरे में खिड़की के छड़ों के ऊपर माथा रखकर चुपचाप बैठी हुई हैं, मुझे देखते ही वे उठ पड़ीं। मैंने कहा—"परसों ही नये मकान में चलना होगा।"

उन्होंने कहा—"और पन्द्रह दिनों तक धीरज रक्खो।"

मैंने पूछा—"क्यों?"

अनिला ने कहा—"सरोज की परीक्षा का फल शीघ्र ही निकलेगा—इसके लिए मेरा मन बहुत ही उद्विग्न हो उठा है। इधर कई दिनों तक हिलना-डुलना अच्छा नहीं लगता।"

दूसरे असंख्य विषयों में यही एक ऐसा विषय है, जिसके सम्बन्ध में, मैं अपनी स्त्री के साथ किसी प्रकार की आलोचना नहीं करता। इस कारण आपाततः कुछ दिनों के लिए मकान का बदलना स्थगित रह गया। इसके ही बीच मुझे यह खबर मिली कि, सितांशु शीघ्र ही

दक्षिण भारत में भ्रमणार्थ जाने वाला है। इस कारण दो नम्बर के ऊपर से उसकी छाया अब हट जायगी।

प्रारब्ध-नाट्य के पाँचवें अङ्क का अन्तिम भाग हठात् दिखाई पड़ा। कल मेरी स्त्री अपने पिता के घर गयी थीं। आज लौट आने के साथ ही उन्होंने अपने कमरे का दरवाजा बन्द कर लिया। वे जानती थीं, आज रात को हमारे द्वैतदल का पूर्णिमा-भोज है। इसी विषय पर उनके साथ परामर्श करने के अभिप्रायः से मैंने उनका दरवाजा खटखटाया। पहले कोई आहट नहीं मिली। मैंने पुकारा—"अनू।" थोड़ी देर बाद अनिला ने आकर दरवाजा खोल दिया।

मैंने पूछा—"आज रात को रसोई पकाने का इन्तजाम सब ठीक है तो?"

उसने कोई उत्तर न देकर, सिर हिलाकर बताया कि ठीक है।

मैंने कहा—"तुम्हारे हाथ की बनायी हुई मछली की कचौड़ी और विलायती अमड़े की चटनी उन लोगों को बहुत ही अच्छी लगती है, इन्हें तैयार करना भूल मत जाना।"

यह कहकर बाहर आते ही मैंने देखा कि कन्हाई लाल बैठा हुआ है।

मैंने कहा—"कन्हाई, आज तुम सभी लोग कुछ जल्दी ही आ जाना।"

कन्हाई ने आश्चर्य में पड़कर कहा—"यह कैसी बात कहते हो। आज क्या हम लोगों की सभा होगी?"

मैंने कहा—"जरूर होगी। सब तैयारी हो चुकी है—मैक्सिम गोर्की की नयी कहानियों की पुस्तक, बेर्गसँ के ऊपर रसेल की समालोचना, मछली की कचौड़ी, यहाँ तक कि अमड़े की चटनी तक।"

कन्हाई अवाक् होकर मेरे मुख की तरफ ताकता रहा। थोड़ी

देर बाद उसने कहा—,,अद्वैत बाबू, मैं कहता हूँ कि आज रहने दें।"

अन्त में पूछने पर मैं जान गया कि मेरे साले सरोज ने कल तीसरे पहर आत्महत्या कर ली है। वह परीक्षा में पास न हो सका, इसीलिए विमाता से उसे बहुत ही झिड़कियाँ सुननी पड़ी थीं—सह न सकने के कारण गले में चादर बाँध कर उसने आत्म-हत्या कर ली थी।

मैंने पूछा—"तुमने कहाँ से यह खबर सुनी।"

उसने कहा—"प्रथम नम्बर से।"

प्रथम नम्बर से! विवरण इस तरह है—सन्ध्या के लगभग जब अनिला के पास खबर पहुँची, तब गाड़ी बुलाने की प्रतीक्षा न करके अयोध्या को साथ ले, रास्ते में ही एक गाड़ी भाड़े पर ठीक कर अपने पिता के घर चली गयी। रात को अयोध्या से सितांशु को यह खबर मिली। सुनते ही वे तुरन्त वहाँ चले गये। उन्होंने पुलिस को शान्त करके, खुद श्मशान में उपस्थित रहकर, मृतदेह की अन्त्येष्टि-क्रिया करायी है।

घबड़ा कर उसी क्षण मैं अन्तःपुर में चला गया। मैंने सोचा था, शायद अनिला ने दरवाजा बन्द करके फिर अपने सोने के कमरे में आश्रय ले लिया होगा। किन्तु, इस बार जाकर मैंने देखा कि, भण्डार घर के सामने के बारामदे में बैठकर वह अमड़े की चटनी बनाने की तैयारी कर रही है। जब मैंने ध्यानपूर्वक उसके चेहरे को देखा तब समझ गया कि, एक ही रात में उसका जीवन उलट-पलट गया है। मैंने अभियोग करके कहा—"तुमने मुझे कुछ भी क्यों नहीं बताया?"

उसने अपनी बड़ी-बड़ी दोनों आँखें ऊपर उठाकर एक बार मेरे मुँह की तरफ देखा। कोई भी बात उसने नहीं कही। मैं लज्जा के मारे अत्यन्त छोटा हो गया। यदि अनिला कह देती कि, 'तुमको

बताने से लाभ ही क्या है,' तो उस हालत में मेरे पास कुछ भी जवाब न रहता। जीवन के इन सब विप्लवों—संसार के सुख-दुखों को लेकर उसके साथ कैसा व्यवहार करना चाहिये, उसका हाल क्या मैं कुछ भी जानता हूँ ?

मैंने कहा—"अनिला, यह सब छोड़ो, आज हमारी सभा नहीं होगी।"

अनिला ने अमड़े का छिलका निकालने की तरफ दृष्टि रखकर कहा—"क्यों नहीं होगी। खूब होगी। मैंने इतने परिश्रम से सारी तैयारियाँ की हैं, उनको मैं नष्ट न होने दूँगी।"

मैंने कहा—आज हमारी सभा की कार्रवाई होना असम्भव है।"

उसने कहा—तुम लोगों की सभा भले ही न हो, आज मेरा भोज अवश्य होगा।"

मुझे मन में कुछ आराम मिला। मैंने सोचा, अनिला को कोई अधिक शोक नहीं हुआ है। किसी समय मैं उसके साथ जो बड़े-बड़े विषयों पर वार्तालाप करता था, उसके फलस्वरूप उसका मन बहुत कुछ निरासक्त हो गया है। यद्यपि सभी बातों को समझने लायक शिक्षा और शक्ति उसमें नहीं थी, तो भी पर्सनल मैग्नाटिज्म नामक एक चीज तो है ही।

सन्ध्या के समय मेरे द्वैत दल के दो-चार सदस्यों की संख्या घट गयी। कन्हाई तो आया ही नहीं। प्रथम नम्बर में जिन लोगों ने टेनिस के दल में भाग लिया था, उनमें से भी कोई नहीं आया। मैंने सुना कि कल भोर की गाड़ी से सितांशुमौलि यहाँ से जा रहा है, इसीलिए ये लोग वहाँ बिदाई का भोज खाने गये हैं। इधर अनिला ने आज जैसा भोज का आयोजन किया था, वैसा पहले किसी दिन भी नहीं किया था। यहाँ तक कि मेरी तरह बेहिसाबी मनुष्य भी, यह समझे बिना रह न सका कि यह खर्च अतिरिक्त किया गया है।

उस दिन खाना-पीना हो जाने के बाद सभा भङ्ग होते-होते रात के एक-डेढ़ बज गये। मैं थक कर उसी क्षण सोने चला गया।

अनिला से मैंने पूछा—"सोओगी नहीं?"

उसने कहा—"अभी बासन-बरतन जो यथास्थान रखना है।"

दूसरे दिन जब मैं उठा, तब दिन में आठ बज चुके थे। सोने के कमरे में तिपाई के ऊपर जहाँ मैं अपना चशमा उतारकर रख दिया करता हूँ, वहाँ मैंने देखा कि मेरे चश्मे के नीचे एक टुकड़ा कागज दबाकर रखा हुआ है। उस कागज में अनिला के हाथ का लिखा यह पत्र है—"मैं जा रही हूँ। मुझे ढूँढ़ने की चेष्टा मत करना। मुझे पा न सकोगे।"

मैं कुछ भी समझ न सका। तिपाई के ऊपर एक टीन का बक्स था। उसको खोलकर मैंने देखा, उसके भीतर अनिला के सभी गहने हैं—यहाँ तक कि उसके हाथ की चूड़ियाँ, हाथ के कंगन तक हैं, केवल शंख की चूड़ी नहीं है। एक ताखे में चाभियों का गुच्छा है, दूसरे ताखों में कागज में लपेट कर कुछ रुपये, चौवन्नियाँ, दुवन्नियाँ रखी हुई हैं। अर्थात् महीने का खर्च बचाकर अनिला के हाथ में जो कुछ जमा हुआ था, उसका अन्तिम पैसा तक वह रख गयी है। एक खाते में बासन-बरतन, वस्तु-सामग्री की तालिका थी, और धोबी के घर जो कपड़े गये हैं उनका हिसाब है। इसके साथ ही ग्वाले के घर का और बनिये की दूकान का जो कुछ देना है उसका भी हिसाब लिखा हुआ है, केवल उसका अपना ठिकाना उसमें नहीं है।

इतना ही केवल मैं समझ सका कि अनिला चली गयी है। मैंने सभी कमरों को अच्छी तरह देखा—भीतर-बाहर पता लगाया, कहीं भी उसका पता नहीं लगा। कोई विशेष घटना हो जाने पर उसके सम्बन्ध में कैसी व्यवस्था की जानी चाहिये, इसे मैं सोच-विचार कर

किसी दिन भी ठीक न कर पाता था। हृदय-प्रदेश में तूफान उठ खड़ा हुआ। अकस्मात् प्रथम नम्बर की तरफ नजर उठाकर मैंने देखा, उस मकान के दरवाजे, जँगले सभी बन्द हैं। ड्योढ़ी के पास दरवान गड़गड़े पर तमाखू पी रहा है। राजा साहब भोर ही में प्रस्थान कर चुके हैं। मन में घबड़ाहट छा गयी। अकस्मात् मैं समझ गया कि जिस समय मैं एकाग्र मन से नवीनतम न्याय की आलोचना कर रहा था, उस समय मानव-समाज का पुरातनतम एक अन्याय मेरे घर में जाल फैलाता जा रहा था। फ्लोबेयर, टालस्टाय, तुर्गनेव आदि बड़े-बड़े गल्प-लेखकों की पुस्तकों में जब मैं ऐसी घटनाओं की बातें पढ़ता था, तब बड़े ही आनन्द से सूक्ष्मातिसूक्ष्म रूप से उसकी तत्त्व-कथा पर विश्लेषण के साथ विचार करता था। किन्तु, अपने ही घर में, ऐसी ही घटना ऐसी सुनिश्चित रीति से हो सकती है, इसकी कल्पना कभी मैंने सपने में भी नहीं की थी।

प्रथम धक्के को सम्हाल कर मैंने प्रवीण तत्त्वज्ञानी की तरह समस्त विषय को यथोचित हलका मानकर देखने की चेष्टा की। जिस दिन मेरा विवाह हुआ था, उस दिन की बात याद करके मैं सूखी हँसी हँस पड़ा। मैंने विचार किया कि मनुष्य कितनी आकांक्षाओं कितने आयोजनों, कितने आवेगों का अपव्यय करता रहता है। कितने दिन, कितनी रातें, कितने वर्ष निश्चिन्त मन से बीत गये। स्त्री नामक एक सजीव पदार्थ निश्चय ही है, यह मानकर मैं आँखें बन्द किये पड़ा हुआ था। ऐसे ही समय में आज हठात् आँखें खोल कर मैंने देख लिया कि बुद्‌बुद् फट गये हैं। फट जाने दो—किन्तु इस जगत् में सभी तो बुद्‌बुद् नहीं हैं। युग-युगान्तरों की जन्म-मृत्यु को अतिक्रम करके टिकी हुई सब चीजों को पहचान लेना, क्या मैंने नहीं सीखा है?

किन्तु मैंने देख लिया कि अकस्मात् मेरे भीतर रहने वाला नवीन

काल का ज्ञानी मूर्च्छित हो पड़ा है, किसी आदि काल का प्राणी जाग उठा है और फिर क्षुधा से पीड़ित होकर रोता हुआ घूमने लगा है। बरामदे की छत पर चहल-कदमी करते-करते, खाली मकान में घूमते-घूमते, अन्त में, जिस जगह खिड़की के पास अपनी स्त्री को कितने ही दिन अकेली ही चुपचाप बैठी हुई देख चुका हूँ, उसी अपने सोने के कमरे में एक दिन जाकर मैं पागल की तरह सभी चीजों को उलटने-पलटने लगा। अनिल के बाल बाँधने के आईने के दराज को अकस्मात् खींच कर खोल देने के साथ ही, रेशमी लाल फीते से बँधा चिट्ठियों का एक बण्डल निकल पड़ा। ये चिट्ठियाँ प्रथम नम्बर से आयी थीं। हृदय जलने लगा। एक बार विचार उठा कि सबको ही जला डालूँ। किन्तु जहाँ बड़ी वेदना रहती है वहाँ ही भयङ्कर आकर्षण भी रहता है। इन सभी चिट्ठियों को पढ़े बिना न रह सका।

इन चिट्ठियों को मैंने पचासों बार पढ़ डाला। प्रथम चिट्ठी तीन-चार टुकड़ों में फाड़ डाली गयी थी। मालूम होता है, पाठिका ने पढ़ लेने पर तुरन्त ही उसे फाड़ डाला, उसके बाद फिर यत्नपूर्वक कागज के ऊपर गोंद लगाकर उसे जोड़ दिया है। वह चिट्ठी इस प्रकार है—

मेरी यह चिट्ठी न पढ़कर ही यदि तुम फाड़ डालोगी, तो भी मुझे कोई दुःख न होगा। मुझे जो कुछ कहना है, वह तो कह देना ही पड़ेगा। तुमको मैंने देखा है। इतने दिनों से इस संसार में आँखें खोलकर घूम रहा हूँ। किन्तु देखने योग्य देख लेना मेरे जीवन में इस बत्तीस वर्ष की अवस्था में यही पहली बार हुआ है। आँखों के ऊपर नींद का परदा डाल दिया गया था, तुमने सोने की सलाई से वह परदा छूमन्तर कर दिया है—आज मैंने नवजागरण के भीतर से तुमको देख लिया है। मेरा जो कुछ पावना था वह मैं पा गया हूँ। मैं

और कुछ नहीं चाहता, केवल तुम्हारी स्तुति तुमको सुना देना चाहता हूँ। मैं यदि कवि होता तो उस हालत में अपना यह स्तुति, चिट्ठी में लिखकर तुम्हारे पास भेजने की जरूरत ही नहीं पड़ती, छन्दों के भीतर से समस्त जगत् के कण्ठ में उसको प्रतिष्ठित कर देता। तुम मेरी इस चिट्ठी का कोई भी उत्तर न दोगी, यह बात मैं जानता हूँ—किन्तु मुझे तुम गलत मत समझना। मैं तुम्हारी कोई हानि कर सकता हूँ, ऐसा सन्देहमात्र भी मन में न रखकर, तुम मेरी पूजा चुपचाप ग्रहण करो। मेरी इस श्रद्धा को यदि तुम श्रद्धा कर सको, तो इससे तुम्हारा भी कल्याण होगा। मैं कौन हूँ, यह बात लिखने की जरूरत नहीं है, किन्तु निश्चय ही यह बात तुम्हारे मन में छिपी न रहेगी।'

ऐसी ही पचीस चिट्ठियाँ थीं। इनमें से किसी भी चिट्ठी का उत्तर अनिला ने उसके पास भेजा था, इसका कोई भी संकेत इन चिट्ठियों में नहीं है। यदि उत्तर गया होता तो सोने की सलाई का जादू, एकदम ही उड़नछू होकर, स्तुति-गान बन्द हो जाता।

किन्तु, यह कैसा आश्चर्य है। सितांशु ने जिसको अल्प अवधि में पहचान लिया, उसे मैं इन आठ वर्षों की घनिष्ठता के बाद, इन परायी चिट्ठियों के द्वारा पहचान पाया। न जाने मेरी आँखों के ऊपर नींद का जो परदा है वह कितना मोटा है। पुरोहित के हाथ से मैंने अनिला को पाया था, किन्तु उसके विधाता के हाथ से उसे ग्रहण करने का कुछ भी मूल्य मैंने नहीं दिया। मैं अपने द्वैत दल को और नव्य न्याय को उसकी अपेक्षा बहुत बड़े रूप में देखता रहा हूँ। इस कारण, जिसको मैंने किसी दिन भी नहीं देखा, एक क्षण के लिए भी जिसे नहीं पाया, उसको यदि कोई दूसरा अपना जीवन उत्सर्ग करके पा गया हो, तो क्या कहकर किसके सामने मैं अपनी क्षति की नालिश करूँ।

अन्तिम चिट्ठी इस प्रकार है—'बाहर से मैं तुमको कुछ भी

नहीं जानता, किन्तु भीतर से मैंने तुम्हारी वेदना को देख लिया है। इसी जगह मेरी कठिन परीक्षा है। मेरी ये पुरुषोचित बाँहें निश्चेष्ट रहना नहीं चाहतीं। इच्छा यही हो रही है कि स्वर्ग-मर्त्य के समस्त शासन को विदीर्ण करके तुमको तुम्हारे जीवन की व्यर्थता से उद्धार कर लाऊँ। इसके बाद यह भी विचार उठता है कि तुम्हारा दुःख ही तुम्हारे अन्तर्यामी का आसन है। उसको हरण करने का अधिकार मुझे नहीं है। कल भोर बेला तक मैंने मियाद ली है। इस समय के बीच यदि कोई देव-वाणी मेरी इस द्विधा को मिटा देगी, तो उस हालत में जो होना होगा वह होकर रहेगा। वासना की प्रबल हवा से मार्ग-निर्देशक प्रदीप बुझ जाता है। इसीलिए मैं अपने मन को शान्त रक्खूँगा—एकाग्र मन से यही मन्त्र जपता रहूँगा कि तुम्हारा कल्याण हो।'

समझ में यही बात आ रही है कि द्विधा दूर हो चुकी है—दोनों का मन एक होकर मिल गया है। सितांशु की लिखी ये चिट्ठियाँ मानो मेरी ही चिट्ठियाँ बन गयीं—वे ही आज मेरे प्राणों की स्तुति-मन्त्र हैं।

× × × ×

कितने दिन बीत गये, अब पुस्तक पढ़ने में मन नहीं लगता। अनिला को किसी तरह भी एक बार देखने के लिए मेरे मन में ऐसी वेदना उठ खड़ी हुई कि मैं किसी भी हालत में स्थिर न रह सका। पता लगाने पर मुझे मालूम हुआ कि सितांशु मसूरी पहाड़ पर रह रहा है।

वहाँ जाकर सितांशु को अनेक बार मैंने रास्ते में चलते-फिरते देखा, किन्तु उसके साथ मुझे अनिला नहीं दिखाई पड़ी। मेरे मन में यह सन्देह उत्पन्न हुआ कि शायद उसे अपमानित करके इसने

त्याग दिया है। मैं स्थिर न रह सका। एक दिन जाकर मैंने उससे मुलाकात की ही। सभी बातों के विस्तार के साथ लिखने की जरूरत नहीं है। सितांशु ने केवलमात्र यही कहा—"अपने सारे जीवन में उसके पास से मुझे केवल एक चिट्ठी मिली है। वह चिट्ठी यही है, देख लीजिये।"

यह कहकर सितांशु ने अपने पाकेट से एक छोटा सुनहला कार्डकेस खोलकर, उसके भीतर से एक टुकड़ा कागज निकाला। उसमें लिखा था—'मैं जा रही हूँ, मुझे ढूँढ़ने की चेष्टा मत करना। करने से भी पता न पाओगे।'

वे ही अक्षर हैं, वही लिखावट है, वही तारीख है, और जिस नीले रङ्ग के चिट्ठी के कागज का आधा भाग मेरे पास है, उसका ही बाकी अर्धभाग यह टुकड़ा है।

